UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186191

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 396/M25N Accession No. H 3497

Author मलिक, सत्यवती

Title नारी हृदय की साध १९६१

This book should be returned on or before the date last marked below.

नारी हृदय की साध

नारी हृदय की साध

सत्यवती मलिक

मूल्य
दो रुपये

प्रथम संस्करण : अगस्त, १९६१
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : युगान्तर प्रेस, दिल्ली

आदरणीय बनारसीदासजी चतुर्वेदी को समर्पित

निवेदन

इस संग्रह की कुछ कहानियां पहले पुस्तकाकार छप चुकी हैं; किन्तु जिन संग्रहों में छपी थीं, वे वर्षों से अप्राप्य हैं। अन्य कहानियां जहां-तहां पत्रिकाओं में छपी थीं और अब संगृहीत हो रही हैं।

—लेखिका

क्रम

माली की लड़की	९
नीलम	१८
कब्रिस्तान में	२४
हसन	३०
अंधड़	३८
जीवन-संध्या	४६
भाई-बहिन	५६
साथी	६१
दो फूल	६८
बेकारी में	७२
उऋण	७४
दिन-रात	७९
कैदी	८७
मुक्ति	९५
इनकी जात	१०१
वंशी और चिट्ठी	१०६
नारी हृदय की साध	१०९
सिद्धवां	११२
सगाई के दिन	११६

माली की लड़की

मास्टर के चले जाने के बाद विजयकुमार उस ऊंचे-समतल टीले पर खड़ा होकर दोनों हाथों से इस ज़ोर की ताली पीटता कि वह सम्पूर्ण पर्वतखंड गूंज उठता ; और उन तालियों के प्रत्युत्तर में बिक्की, ऊषा, हर्ष आदि का स्वागत-मंडल भी लकड़ी के बने हुए फर्श पर अपने भारी बूटों से धम्-धम् करता हुआ और तड़-तड़ तालियां बजाता-बजाता वेगपूर्वक कोठी से बाहर निकल पड़ता । फिर उसी हरे-भरे ढालू स्थान पर सब जने उलझी लता की भांति एक-दूसरे से लिपट जाते और हः-हः की विकट ध्वनि से हंस-हंसकर लोट-पोट होते हुए छलांगें लगाते नाले तक नीचे पहुंच जाते, और तब न जाने कितने प्रकार की कौतुक-क्रीड़ाएं उस बर्फीले नाले के किनारे पर पड़ी स्वच्छ ठोस शिलाओं पर किया करते ।

शिशु-जगत् के इस क्षीण-कोमल मृदुहास में ज्येष्ठ मास की मनोहर प्रकृति मानो और भी मतवाली हो उठती। आकाश तक ऊंचे, लंबे, घने वृक्षों में जहां-तहां छिपे हुए सैकड़ों अज्ञात पक्षी अनेक स्वरों में सुरीले गान गा उठते। सामने ही पहाड़ी पर का निरंतर झर-झर करता हुआ झरना मानो द्विगुणित होकर कलकल की ध्वनि करने लगता। उन सुरभित फूलों से लदी वनस्थली में इधर-उधर मस्ती से सरसराती हुई शीतल हवा भी इन सबके सुर में सुर मिलाने लगती । कभी-कभी सहसा न जाने किस-किस ओर से श्वेत बादलों के समूह हरे मैदान तक नीचे उतर आते और इस बालकों को आलिंगन करके वापस लौट जाते । उसके बाद सूर्य की हलकी निस्तेज किरणें सघन झाड़ियों में से छन-छनकर नवनीत-से कोमल-भोले मुखड़ों को पुनः चूमने लगतीं ।

भाई-बहिनों के इस अपूर्व आह्लाद और हंसी-खुशी के उमड़ते हुए आनंद-सागर में डुबकियां लगाने के लिए तरसते तो केवल दो सतृष्ण नेत्र—दो अतृप्त आंखें। वे आंखें थीं इस कोठी के चौकीदार की एकमात्र अष्टवर्षीया कन्या मुक्ता की। प्रतिदिन दोपहरी के समय उसका पिता पीछे के घने जंगल में लकड़ी काटने के लिए चला जाता और मुक्ता को नीचे के मैदान में चरवाहों के बालकों के साथ पशुओं की रखवाली के लिए छोड़ जाता। किन्तु वह बेचारी मैली-कुचैली बालिका मैदान से भाग आती और आंखें फाड़-फाड़कर इन साफ-सुथरे शहरी बालकों के असीम प्यार एवं मधुर हास्य के विचित्र कोलाहल को दूर-दूर से ही देखा करती और मानो उनके खेल-कूद में भाग लेने के लिए उत्कंठित हो, कभी दाहिने, कभी बायें और कभी सीधे-से आकर उन बालकों के आसपास मंडराया करती। बालकों के इस खेल-कूद से सर्वथा पृथक् रहने पर भी कुछ ही दिनों में वह इनकी चेष्टाओं में इतनी तन्मय हो गई कि उनकी हंसी के साथ अनायास ही वह मुस्करा देती और उनके लड़ाई-झगड़े में उसकी भी वैसी ही मुद्रा बन जाती।

नियमानुसार ठीक ग्यारह बजे तड़-तड़ करके तालियां बज उठीं और धम्-धम् की आवाज़ सुनाई दी; किंतु और दिनों की अपेक्षा आज इस आनन्दोल्लास में सुर-ताल की मात्रा अधिक ऊंची जान पड़ती थी। हू-हू करके चीखते हुए और ढब-ढब करके नाचते हुए ये लोग मानो सुख की नींद सोई पर्वतश्रेणी को चौंका रहे थे।

अपना दिलचस्प उपन्यास वहीं अंगीठी पर रखते हुए आनन्दकुमारी ने कहा, "भाभीजी, आज तो विजय को ज़रूर ही कोई नई चीज़ मिली है! आइए, चलकर देखें।"

"होगा कोई राबिन का घोंसला या नये रंग की तितली—मास्टर जाता है, तो इनकी बला टलती है!" मृणालिनी ने बुनने की सलाई फिर से आरंभ करते हुए उत्तर दिया।

"और क्या वह भी दिन-रात आपकी तरह स्वेटर बुना करे?"

आनन्दकुमारी ने कहा।

इसी समय बगलवाले कमरे से आवाज़ आई, "अजी, ज़िन्दगी का लुत्फ स्वेटर बुनने में नहीं है।"

"नहीं, ज़िंदगी का लुत्फ तो बिस्तरे पर लेटकर पुस्तकें पढ़ने में ही है। अच्छे घर से सैर करने निकले हैं।" मृणालिनी ने अपने पति देवकुमार की बात का व्यंग्यपूर्वक उत्तर दिया।

आनन्दकुमारी ने मृणालिनी के गले में पीछे से दोनों हाथ डालते हुए बड़े प्रेम से कहा, "भाभी, चलो न !"

रसोइये को शीघ्र भोजन तैयार रखने की आज्ञा देकर ननद-भौजाई ने नाले के पास जाकर देखा कि बच्चों का नाचना-कूदना व्यर्थ नहीं है। विजय के हाथ में एक दूध-सा सफेद बिल्ली का बच्चा है, और सब लड़के द्रुतगति से बहती हुई उस जल-धार के समीप ही एक झोंपड़ा बनाने की व्यवस्था कर रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि मुक्ता भी बच्चों की इस फौज में शामिल हो गई है, और विजय एक कमांडर की भांति उसे हुक्म दे रहा है—जाओ, वह लकड़ी लाओ, वह पत्थर उठा लाओ। और किस फुर्ती से वह फूल-सी बालिका जंगले की टूटी-फूटी तख्तियां और सीधे, नुकीले पत्थर एकत्र कर सामने रखती चली जा रही है ! बिल्ली का बच्चा देकर विजय से हेल-मेल बढ़ा सकने का यह अचूक उपाय मुक्ता ने स्वयं ही ढूंढ़ लिया था। परन्तु आज ऊषा, हर्ष, बिक्की आदि की तो आफत थी, क्योंकि वे मुक्ता के बराबर और वैसी फुर्ती से काम नहीं कर सकते थे।

आनन्दकुमारी ने अच्छा मौका देखकर कहा, "वाह सार्जेण्ट साहब ! आज तो बढ़िया शिकार हाथ लगा है !"

विजय की आनन्द से गहरी पटती है, और वह सार्जेण्ट के नाम से बहुत चिढ़ता है, इसीलिए विजय कुछ नहीं बोला। केवल हूं-हूं करके दांत कट-कटाता रह गया।

पहाड़ पर जाने के प्रायः एक मास पूर्व ही देवकुमार ने अपने मित्र

मि० कौल को कोठी इत्यादि का प्रबंध करने के साथ ही साथ विजय के लिए एक ट्यूटर ढूंढ़ रखने के लिए भी लिख दिया था, ताकि दो-तीन मास की छुट्टियों में बच्चों का समय नष्ट न हो। इसी कारण इस वर्ष परिवार को साथ ले जाकर भी उन्हें किसी प्रकार की दिक्कत नहीं उठानी पड़ी। परिवार में उनके तीन बच्चों और पत्नी के अतिरिक्त उनकी छोटी बहिन आनन्दकुमारी भी कालेज की छुट्टियों में साथ हो गई थी। उनकी बड़ी बहिन के दो-तीन बच्चे भी साथ ही थे।

कई प्रकार के जंगली वृक्षों से घिरी हुई वह ९७ नं० की कोठी धूप-अगरु की सुगंधित हरी-पीली झाड़ियों से आच्छादित उस विशाल पर्वत की ढाल पर स्थित है। कोठी के चारों ओर बहुत-सी खुली जगह छोड़कर उस असीमित स्थान में लकड़ी के जंगले द्वारा सीमा-बांध दी गई है। इस जंगले का कच्चा-सा फाटक कोठी से पचास-साठ गज़ नीचे की ओर एक टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी के आरंभ पर बना है। फाटक के समीप ही नाले का पुल है। कोठी के विस्तृत घेरे में जहां सफेद फूलों के खेत से उग आए हैं, एक ऊंचा समतल स्थान विजय ने अपने पढ़ने के लिए चुन लिया है।

कच्चे फाटक से कुछ ही दूर पर एक छोटी-सी कोठरी चौकीदार के लिए बनी है। चौकीदार को चौकीदार न कहकर सब लोग माली कहते हैं और मुक्ता को माली की लड़की। माली यहीं नीचे के एक पहाड़ी गांव का रहनेवाला है। वर्षों से वह इसी कोठी की चौकीदारी का काम करता आया है। शीतकाल में जब यह विशाल पर्वतखण्ड हिम का श्वेत दुशाला-सा ओढ़कर समाधिस्थ हो, गहरे चिन्तन में लीन हो जाता है, तो चौकीदार भी मानो उसकी तपस्या में विघ्न-बाधा न डालने की इच्छा से चुपके से अपने गांव को चला जाया करता है।

माली का काम दिन में जंगल से लकड़ी काटकर लाना, नाले से पानी भरना और रात को चौकसी करना है; पर जब कभी उसे कमरे साफ करने को कहा जाता है, तो वह बड़े रूखे-से ढंग से बड़बड़ाने लगता है, "हजूर, हमसे इतना काम नहीं होगा।" उसे बच्चों का फूल आदि बिगाड़ना भी

पसन्द नहीं है, इसीसे देवकुमार को प्रतिदिन उसके विरुद्ध अनेक शिकायतें सुननी पड़ती हैं। किन्तु उसकी लड़की मुक्ता ? मुक्ता के चेहरे पर कुछ ही दिन पूर्व असमानता, दीनता और भय की जो छाप सदैव बनी रहती थी, उसे किस विचित्र कौशल द्वारा इस ग्रामीण बालिका ने स्वयं ही दूर कर दिया है, यह देखकर आश्चर्य होने लगता है।

विजय के सोकर उठने के पूर्व ही आज माली की लड़की मुंह-हाथ धोकर अपना लम्बा कुरता और लाल टोपी पहने निस्संकोच भाव से बरामदे में आ खड़ी हुई। कुछ ही देर के बाद चाय पीने के समय बच्चों ने जब बिस्कुट, मक्खन, टोस्ट के लिए ऊधम मचाया, तो उसने भी अपने पिता को मिट्टी के प्याले में चाय और कुलचा देने को मजबूर कर दिया। दोपहर के समय जब विजय की पार्टी खाने के लिए बैठकर नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन उदरस्थ करने लगी, तो मुक्ता भी मिट्टी के बड़े बर्तन में बासी भात लेकर एक ऐसी जगह खाने बैठ गई, जो खाने के कमरे की खिड़की में से साफ-साफ देखी जा सकती थी। बच्चों के छीन-झपटकर भोजन करने में जो अप्रकट प्रेम भरा होता है, मुक्ता का मन भी शायद उचक-उचककर इस लालसा के लिए बेतरह मचल उठा; किन्तु जहां तक पहुंचने की वह अधिकारिणी नहीं है, वहां तक पहुंचने का प्रयास भी उस लाचार बालिका ने नहीं किया।

विजय ने खिड़की में से झांककर उसे देखा, तो मुक्ता खिलखिलाकर हंस पड़ी और आनन्द के आवेग में उन जंगली गुलाब की महकती हुई झाड़ियों में छिप गई। तब विजय और उसके साथी खाना बीच में ही छोड़कर, 'माली की लड़की! माली की लड़की!' कहकर चिल्लाते हुए व्यग्रता से मुक्ता को ढूंढ़ने लगे। उनके आगे-पीछे अनेक रंगों से चित्रित नन्हे-नन्हे परोंवाली परियों-सी सुन्दर तितलियां उड़ने लगीं, मानो चुटकी बजाकर उन्हें चेलेंज दे रही हों, हमें पकड़ो, हमें पकड़ो। परन्तु मुक्ता न जाने कहां गुम हो गई थी।

बच्चों के आश्चर्य का तो ठिकाना ही न रहा जब सहसा उन्होंने देखा कि माली की लड़की न जाने किस मार्ग से निकलकर फाटक के पास लाल-

पीले फूलों का गुलदस्ता लिए हंस रही है । ऊषा, हर्ष आदि तो 'मुझे दो, पहले मुझे दो' कहकर उसकी ओर भागे; किन्तु समझदार विजय मुक्ता की इस तीव्र बुद्धि का कायल हो गया ।

यद्यपि इसी प्रकार किसी दिन बिल्ली का बच्चा देकर, किसी दिन बकरी का बच्चा दिखाकर और किसी दिन अपने आसपास के चिरपरिचित जंगल में छिपे हुए अनेक क्रीड़ा-स्थान दिखाकर मुक्ता ने इन शहरी बालकों के मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है, तो भी विजय, अन्य सभी बच्चों पर उसके रोब को सहन नहीं कर सकता । अब भी वह भली प्रकार जानता है कि इस गंवार लड़की को चाहे तो किसी भी अक्ल के खेल में परास्त कर सकता है ।

दो दिन से लगातार वर्षा हो रही है,—ऐसी मूसलाधार, ऐसी तीव्र, मानो ऊपर के बादल व्याकुल होकर शीघ्र से शीघ्र धरती के पास पहुंचना चाहते हों; पहाड़ी झरने और नाले सबके सब एकसाथ ही हृदय का सम्पूर्ण उल्लास बटोरकर गेरुए रंग से जैसे होली खेल रहे हों । कोठी के नीचेवाला नाला तो न जाने अपनी कितनी ही रूठी हुई साथिनों को मना लाया है और अपने निश्चित स्थान में उछल-उछलकर उन कल-कल हास्य करती हुई अनेक जल-धाराओं में जा मिला है । इस जनहीन स्थान में आज एक अपूर्व अभिनय-सा हो रहा है ।

ठंड अधिक हो जाने के कारण कमरे में अंगीठी जलाकर मृणाल ने छोटे बच्चों को जबरन बिस्तर पर सुला दिया और विजय से कहा कि यदि वह सोना नहीं चाहता, तो बाहरवाले कमरे में अंगीठी के पास बैठकर मास्टर का काम करे । मां का कहना मानकर विजय पुस्तकों का ढेर लेकर बैठा तो सही ; परन्तु इन भौतिक नदी, नालों, झरनों की चंचल ध्वनि के सदृश उसके चिन्ताविहीन कोमल मानस में जो एक शुद्ध-पवित्र उल्लास की धारा-सी प्रवाहित हो रही है, भला वह क्यों न आज इस मोहक प्रकृति से मिल जाए—मनोहारिणी सृष्टि के जीवित-जागरित बिखरे पन्नों को सामने फैला

देखकर बालक विजय उन निर्जीव कागज़-पत्रों में अपना मन किस तरह लगाए ?

दोनों हाथ कोट की जेब में डाले विजय जी भरकर उस अलौकिक सौन्दर्य को खिड़कियों और दरवाज़े की राह से देखता रहा और हाथ में छाता लेकर नीचे नाले तक जाने के मनसूबे बांधता रहा। इस समय वह बिलकुल अकेला है, सारी कोठी में एकदम सन्नाटा-सा छाया हुआ है। ऊषा, हर्ष आदि सभी बालक सोए पड़े हैं। दो-एक बार उनके पैरों में गुदगुदाने पर भी जब वे ऊंह्-ऊंह् करके सोए ही रह गए, तो विजय अनमना-सा हो गया। इधर वर्षा का वेग क्रमशः कम होने को आया और एक नीरव शान्ति सभी ओर व्याप्त हो गई।

सहसा एक मुग्ध कल्पना के आवेश में विजय के दोनों हाथ जेबों में से निकले और ज़ोर से बज उठे। इसी समय जब माली अंगीठी में लकड़ी डालने आया, तो उसके भीगे वस्त्रों में चिपटी हुई सी मुक्ता भी साथ ही दिखाई पड़ी। विजय ने खुशी से कहा, "ओ माली की लड़की ! आओ, तुम्हें कैरम खेलना सिखाएं।"

उष्णता और कैरम खेलने का अनायास ही अधिकार प्राप्त कर सर्दी से ठिठुरती हुई बालिका अरुणोदय की प्रथम किरण की भांति खिल उठी। किन्तु ओह ! वह तो इन खेलों को कुछ भी नहीं जानती ! काली-सफेद गोटियां विजय स्वयं ही स्ट्राइकर की चोट से बोर्ड के सूराखों में फेंक देता और अभिमान के साथ मुक्ता की दीन-हीन आंखों में चकाचौंध करनेवाली निगाह डालकर ज़ोर से कहता, "देखा ! तुम्हारी अब छः गोटियां बाकी हैं, अब चार रह गई हैं, और अब केवल दो ही बाकी हैं।"

नासमझ मुक्ता बार-बार अपनी हार समझकर झेंप जाती थी। उसका नन्हा-सा दिल इस जीत-हार के अहसान के बोझ से दबा जा रहा था। दो-चार दिनों में ही विजय ने मुक्ता को लूडो और ताश के कई छोटे-छोटे खेल सिखला दिए। अब वह हर घड़ी इसी प्रयत्न में रहती कि किसी प्रकार ताश की एक बाज़ी जीतकर विजय के सामने अपनी प्रखर बुद्धि का प्रमाण दे।

मुक्ता अब अपने व्यक्तित्व का दर्जा यहां तक ऊंचा समझने लग गई कि एक दिन जब वह सफेद फूलों के खेत में खुली धूप में बैठकर लूडो खेल रही थी, तो कतिपय पहाड़ी चरवाहे बालक उसकी ओर कुतूहलवश देखने लगे। एक बालक ने साहस करके कश्मीरी भाषा में पुकारा, "हय: मुक्ता !" तो अभिमानिनी मुक्ता ने एक बड़ी-सी छड़ी हाथ में लेकर उद्दण्डतापूर्वक अपने पुराने साथियों को भगा दिया, मानो वर्षों से वह विजय की ही अंग-रक्षिका रही हो।

पगली मुक्ता ने उस समय तनिक भी यह विचार न किया कि किसी दिन यही विजय उसके अभिमान को चूर कर सकता है—उसकी सारी कल्पनाओं और आशाओं की माला को एक ही झटके में तोड़ सकता है।

अपने सहृदय किरायेदारों की विदाई के समय चौकीदार के मन में क्षणिक मोह का जो संचार हो आया था, वह वेतन के अतिरिक्त इनाम में मिले पांच रुपयों और गर्म वस्त्रों के ढेर को प्राप्त कर शान्त हो गया। अपने मालिकों को कुछ दूर तक पहुंचाकर जब वह अपनी कोठरी में पहुंचा, तो सबसे पहले उसने कपड़ों की गठरी खोली और देखकर खुशी से उछल पड़ा। यह याद करके उसे विशेष सन्तोष हुआ कि गत वर्ष के किरायेदारों से भी उसे दो कोट मिले थे। उसके पहले साल एक साहब ने उसे एक बढ़िया ऊनी स्वेटर भी दिया था, जो अब तक उसी तरह पड़ा था। आज के इनाम में एक काली बड़ी जर्सी के अतिरिक्त बच्चों के बहुत-से कपड़े देख वह बहुत ही प्रसन्न हुआ कि इस वर्ष की भयंकर सर्दियां मज़े में गुज़र जाएंगी।

एकाएक आसमान में बहुत-से काले बादल घिर आए। माली की लड़की, मुक्ता, जो सबेरे से ही जंगले पर मुंह लटकाए खड़ी थी, उस मेघाच्छन्न आकाश और उस सुनसान घेरे को एक बार चारों ओर से देखकर सिसक पड़ी। वह न तो आंसुओं को रोक सकी और न रोना ही बन्द कर सकी। उसकी ऊंची रुलाई मानो भारी लहरों की तरह अदम्य रूप से उस निस्तब्ध पर्वतश्रेणी से टकराकर गूंज उठी।

बेचारा माली सिवा इसके कि अपनी बच्ची को दौड़कर छाती से लगा ले और उसके गर्म-गर्म आंसुओं को पोंछ डाले, यह भी न जान सका कि उसकी प्यारी बच्ची के किस कोमल स्थान पर कौन-सी गहरी चोट पहुंची है। अपने विचारशील पिता के बहुत समझाने-बुझाने पर भी वह अबोध बालिका यह न मान सकी कि इसी भांति अनेक किरायेदार इस कोठी में आते रहे हैं और भविष्य में भी आया करेंगे।

मुक्ता कितने ही दिनों तक उस पथरीले झरने की झरझर में, उस सुरभित पवन की सरसराहट में और उन ऊंची शाखाओं पर झूम-झूमकर गाते हुए पक्षियों के कलरव में एक गहरे विषाद और घनी उदासी की छाया अनुभव करती रही, न जाने कब तक तड़-तड़ ताली बजने की गूंज-सी उसके कानों में निरन्तर प्रतिध्वनित होती रही।

घर पहुंचकर विजय अब नियमपूर्वक स्कूल जाता है और लौटते समय सड़क से ही ज़ोरों से तालियां बजाता आता है। उसकी ऊंची तालियों की आवाज़ से सारी भव्य इमारत गूंज उठती है और अड़ोसी-पड़ोसियों तक को भी यह ज्ञात हो जाता है कि विजयकुमार स्कूल से लौट आया है। सभी बच्चे उस पहाड़ की याद को क्रमशः भूलते जा रहे हैं। आनन्दकुमारी को पहाड़ पर जाने से एक लाभ यह हुआ है कि उसे शरारती विजय को काबू में लाने का एक नया उपाय मालूम हो गया है। आनन्दकुमारी के कालेज से वापस आते ही जब विजय उसे तंग करने पहुंचता है, तो वह चुपके से उसके कान में कह देती है, "सार्जेण्ट साहब, माली की लड़की का क्या हाल है?"

बस, इतना ही काफी है। विजय एकदम मुंह फुलाकर कहता है, "चलो, हम नहीं बोलते।"

नीलम

पिछवाड़े, झाऊ के पेड़ के नीचे बंधा नीलम नित्यप्रति केवल निजी बात ही दोहराया करता है। सोचते-सोचते अभी तक उसके दोनों कान खड़े हो जाते हैं। बदन तमतमा उठता है, कभी-कभी ऐसा भी कि 'धरती फट पड़े, और वह समा जाए।'

वही, उस दिन दोपहरी के भरे सन्नाटे में, जब वह राजपथ से धीरे-धीरे कदम गिनता हुआ जा रहा था। भूखा-प्यासा, उन्मत्त पथभ्रष्ट-सा। रासें पैरों में उलझ गई थीं, साज़ अस्त-व्यस्त। आंखों के सामने अंधियारा।

इन पिछले दो दिनों की बात वह तनिक भी समझ न पाया था। कैसे सवेरे ही सवेरे सदा की भांति मालिश करवा, थपथपी ले, अलंकृत हो गर्वित चाल से वह चला। रास्ते में अपने ही घुंघरुओं की झनकार अपनी ही टप-टप पदचाप उसे मानो विभोर कर रही थी। एकाएक न जाने कहां से प्रलय की आंधी उठ आई। चमकती तलवारें, खून और भयावनी सूरतें।

उसके सामने ही तो पिछली सवारी पर वार हुआ। अगली सवारी खम्भे के पास गिरी। और क्षण-भर में दो सांस ले, चींटी-मक्खी की भांति चित हो गई।

तांगे से जाने कैसे वह पृथक् हो गया और भौंचक-सा इधर-उधर गली, बाजार, चौराहे आदि पर चक्कर काटता-काटता लान में जा पहुंचा। इन दो दिनों में उसने आंखें बन्द किए, सिर झुकाए, सैकड़ों बाल-वृद्ध, स्त्रियों, काम-काजी जनों को शहर छोड़ते देखा। अनेक गौ-भैंसों आदि को अपनी ही तरह दिशाहीन घूमते देखा। और कान लगाकर बीभत्स हंसी के मध्य

यह भी सुना—उसके मालिक के ऐसा हज़ार कहने, अनुनय-विनय करने पर भी वह अभी ही दो युवती कन्याओं को बचाकर आया है। वह सभी प्रकार से परिवर्तन को तैयार है, क्योंकि उसका नीलम है, घर में छोटे बच्चे हैं।

पर किसीने माना नहीं। लान में पड़े-पड़े रात-भर वह इसी पागल दशा में आकाश की ओर एकटक निहारता रहा। प्रभात होते ही दो लम्बी सांसों की आवाज़ सुनी। आह केना के फूलों की क्यारियों में चेतन दम तोड़ रहा है। नीलम ने उसे प्यार से सूंघकर कहा, "चेतन, मरना कायरों का काम है।"

"नीलम मरण भला ! आ सुख से पड़ जा ! हरी ठंडी घास है, यह तो जीना है ! सुन, यह सब किसी अदले-बदले में हुआ है, अब हम दर्प से उस भूमि पर नहीं चल सकते। संसार बदल गया है भाई !" और कहते-कहते वह चुप हो गया।

अन्तिम साथी हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर श्वेत चेतन को इस प्रकार करुणाजनक ढंग से बिछुड़ते देख नीलम का जी भर आया। उसकी चाल अत्यन्त धीमी पड़ गई, पर उसके मन में सब कुछ सुनकर भी सन्देह बना रहा। तीन दिन का भूखा-प्यासा कदम गिनता हुआ राजपथ से निकला ही था, सम्भवतः वह परिचित प्यारी आवाज़ उसे कहीं से बुलाए, सुनाई दे। वह कोमल हाथ उसे सहलाएं थपथपी दें और वह पुनः उसी टप-टप मस्तानी चाल से घुंघरुओं की झनकार के साथ चले।

दिन के बारह बजे थे। पर चारों ओर अद्भुत सन्नाटा था, तीन दिन की लगातार मार-काट, लूटमार के अनन्तर भी लोग अधखुली दुकानों, बरामदों, खम्भों के कोनों में भेड़ियों की भांति छिपे बैठे थे। पुलिस की लारी तनिक आगे निकले तो वे लूटने दौड़ें। उनकी आंखों में शैतानी प्यास अभी तक भरी थी।

नीलम को देखते ही भीषण अट्टहास फूट पड़ा। हा ! हा ! अरे वही है, बच्चा डंडे खाकर भी चित नहीं हुआ। कुछ साहसी वीर भी निकल आए। किसीने उसका कान खींचना चाहा, कोई रास लेकर भागा। गहरा व्यंग्य

उपहास हो चुकने के बाद किसीके मन में दया भी उपजी।

"पानी पिला दो साले को, प्यासा है। मुंह से झाग आ रहा है।"

अंत को संध्या समय पीछे फैक्टरी के मैनेजर ने कई दिनों बेकार, भारी-भरकम गाड़ी में जोतकर पुण्य-संचय किया। दो-तीन दिन तक तो वह उससे खींची ही न गई, पांव पड़ते न थे, पथ पहचाना न जाता था। प्रभात होते ही, दो मोटी रस्सियों द्वारा बंध, बड़े शहर के गली-कूचों में, बोतलें पहुंचाना, रात होते ही सूखे घास की भांति प्राणहीन-से, पेड़ तले पड़े-पड़े बीते दिनों के स्वप्न लेना······यही उसकी ज़िंदगी है ?

पर वह नहीं जानता ? घनघोर अंधियारी रात में निर्जन पथ पर शंकर भी तो उस रात यही सोच रहा था। मोटर-बस अभी ही बारामूला से श्रीनगर की ओर गई है; वह पास के गांव से अपने जले घर का, टूटा-फूटा सामान, बर्तन बटोर पथ पर आशा से आ खड़ा हुआ था, शायद कोई आती-जाती मिलिटरी, पुलिस की सवारी उसे कृपा करके ले जाए।

"कौन हो ?"

"शंकर !"

"शंकर ! कौन शंकर ? हा ! हा ! ड्राइवर ऐसे शंकरों को खूब पहचानता है······आज तक वे सब (एक गाली देकर)······अब पता लगेगा। और यह सब माल लूट का है और यह बर्तनों की बोरी······।

इस तीखे उपहास और अंधकार के बीच शंकर का गोरा-गोरा, गोल, भोला मुखड़ा एकदम लाल, और चमक उठा है। आंखों में ढुलक आए हैं, अनायास ही केवल दो आंसू ! भूल गया है कि वास्तव में यह कौन है !

केवल इतना ही ! कल तक वह इस महासुन्दर धरणी का गजगामिनी वितस्ता का नील-श्वेत, हिमाच्छादित शिखरों का सखा, साथी और पोषित पुत्र था। हरे कच्चे शाली के खेतों में गुलेलाला और तितलियों के पीछे दौड़ा करता था। अखरोट के पेड़ों पर सबसे पहले चढ़ जाया करता था। मंदिर

के आंगन से एकदम वस्त्र उतार एवं शीतल फेनिल जलधारा में कूदता, छलांगें लगाता और वायु के मस्त झकोरों में झूमता हुआ, घरवालों के हज़ार बुलाने पर न आता था। दो ही दिनों मे क्या कायापलट हुई ? वह इस समय सुनसान भयावनी निशा में, किससे विनती करे—मां मेरी ! आंचल पसारो, और मुझे गोद में लो।

नीलम को यह भी पता नहीं कि रसोईघर की दहलीज़ के पास खड़ी ललितादेवी भी इसी मुद्रा में है। कुल—घंटा-भर ही हुआ, खाना परोसकर वह ले गई थी। आज उनका मन ठीक न था, रात-भर कमर में दर्द के कारण। ……हो सकता है, हल्दी अधिक पड़ गई हो अथवा थाली भी साफ न हो।

पर उसे अभी-अभी पास-पड़ोस, नौकर-चाकर, बाल-बच्चों के सामने, मानो कान पकड़कर कहा गया हो—श्रीमतीजी, रास्ता उधर है, जहां जी चाहे।

ललिता के आगे आकाश-पाताल सब शून्य है। उसे तनिक भी समझ में नहीं आ रहा, पूरे बारह वर्षों से, वह उस घर के बाल-बच्चों को निरंतर जन्म देती, पालती, सुबह से शाम तक सबका मन बहलाती है। 'रानी, रानी' कहकर पुकारी जाती है।

इन चंद मिनटों में ही क्या गज़ब हो गया ? उसकी वास्तविक स्थिति क्या है ? पगली चेष्टा करने पर भी जान नहीं पा रही, कांपती दिशाओं, चहुं ओर डोलते भूमंडल के बीच रह-रहकर आवाहन कर रही है—मां वसुंधरे ! सीता माता को तूने ही तो स्थान दिया था।

और ऊपर छत पर खड़े विवेक का भी तो यही हाल है। आज से छः मास पूर्व, मनोविज्ञान में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने पर, कहां-कहां के ऊंचे स्वप्न ले रहा था। घर आता था, तो स्वागत था, बाहर जाता तो सम्मान था। किंतु अब जहां-तहां इंटरव्यू करते-करते दम टूट रहा है, ड्रेसिङ्ग गाऊन में छेद और पाजामे के चिथड़े हो चले हैं।……

नीचे उतरे तो छोटे-छोटे बच्चों तक के चेहरे पर एकाएक व्यंग्य की रेखाएं उभर आएंगी। ऊपर रेलिंग के पास खड़ा सकुचाता है। आफिस की चिक के पास जाते ही उसके तरुण नेत्रों में ऐसा भेद देनेवाला कर्तव्यविमूढ़-सा भाव है। ढूंढ़ता है, कहीं कोई छिद्र दिखाई दे, तो वह इस बेढंगे संसार के पर्दे से ओट हो जाए।

नीलम यदि गहन में धीमे से सुने, तनिक आंखें खोलकर देखे—तो लगेगा वह अकेला नहीं! आज विश्व-भर में अधिकांश मानव समाज के हृदय से रह-रहकर यही एक मंत्र उच्चरित हो रहा है, एक ही व्यथा है। दो कर जोड़ कण-कण से यही पुकार है।

पर न धरती फटती है, न कोई समाता है।

वैसे नीलम भी ऐसा निराश नहीं। यद्यपि गीली धरती पर निर्जीव तृण-सा पड़ा-पड़ा अपने में झांकने लगता है। फिर सोचता है, एक बार समस्त प्राणों से, चीखकर, आकाश-पाताल में फूलों की क्यारियों में यदि कहीं चेतन हो, तो स्वर पहुंचाए—'भाई, वास्तव में आज ठौर नहीं है।'

इस सहानुभूतिविहीन निर्मम, जीवित संसार से, हरी घास में मरण भला। उस दिन का दर्प सर्वथा मिथ्या था चेतन! आज मुंह इधर करे तो उसीका दोष, उधर करे तो······

पर भोर होने से कुछ पूर्व ही, दूर राजपथ की ओर से टप-टप सरपट चाल, घुंघरुओं की आवाज़, उनमें मिला गीत का स्वर उसे एकाएक चौंका देते हैं। जाने कौन-सी आशा इस अंधकार में भी आलोकित हो उठती है। उसके शिथिल दुखती हड्डियों-भरे गात में, क्षण-भर एक अद्‌भुत सिहरन दौड़ जाती है। दोनों कान चौकन्ने किए, नथुने फुलाए, सीधा खड़ा हो जाता है।

वह अभी तक जीता है, उसमें बल है, पौरुष है, प्राण अभी चुके तो नहीं। आज ही दोपहर होने पर जब देह में पूरी उष्णता आ जाएगी, तो दोनों रस्सियां तोड़कर भाग सकता है। कोई रोकनेवाला नहीं, वह अजेय है।

पर ऐसा ही करते-करते सांझ हो आती है, दिन-भर, गली-गली सोडा-वाटर की बोतलों का बोझा ढोने के बाद पीछे संकीर्ण नीरव पथ से भारी-भरकम ठेलागाड़ी के आगे जुते, नीलम की चाल बहुत धीमी क्रमशः करुणा-जनक होती जा रही है, किंतु बोतलों का व्यापार चल निकला है। वे संख्या में कहीं अधिक रंगीन व आकर्षक हैं। और गाड़ी पर का नया पीला रंग, रोगन, विज्ञापन आदि तो उसके पीठ के सफेद घावों की भांति उत्तरोत्तर चमकने लगा है।

कब्रिस्तान में

रजिस्टर के पन्ने दो बार शुरू से आखिर तक उलट-पुलटकर सफेद दाढ़ीवाले बूढ़े माली जार्ज ने अस्वीकृतिसूचक सिर हिलाते हुए उत्तर दिया, "चार्ल्स नाम का कोई भी व्यक्ति पिछले बारह महीनों में इस पैसेनडेल कब्रिस्तान में नहीं दफनाया गया है," तो लोहे के बड़े फाटक के सहारे खड़ी युवती स्टैला का मुख तुरन्त सफेद पड़ गया।

करीब दस मिनट तक संज्ञाहीन-सी टूटी लता की भांति फाटक के जंगले के साथ ही वह चिपटी रही; किन्तु एकाएक उसके निश्चेष्ट मस्तिष्क में क्या आया?—उस मीलों लम्बी विस्तृत भूमि के बीचो-बीच, जहां दिन-रात प्रलय का सा भयावना सन्नाटा छाया रहता है, निर्भयतापूर्वक तेज़ी से कदम बढ़ाते हुए वह घुस गई। प्रत्येक कब्र पर के शिलालेख की ओर एक भेद-भरी दृष्टि डालते हुए वह आगे बढ़ने लगी। उसे अभी तक यह सम्भावना थी कि माली की किताब में भूल से चार्ल्स का नाम दर्ज होने से रह गया है।

स्टैला को बिलकुल अकेले कब्रिस्तान की भीतरी चारदीवारी में इधर-उधर अकुलाते हुए भटकते देख बूढ़े जार्ज का हृदय भी उस बीस-पचीस वर्ष की कच्ची कली-सी अल्हड़ युवती के प्रति पसीज उठा। उसे स्मरण हो आया कि पिछले कई वर्षों से लगातार सुन्दर घुंघराले बालोंवाली यह रमणी एक भूरी आंखोंवाले बलिष्ठ युवक के साथ किसी बन्धु की समाधि पर फूल चढ़ाने आया करती थी।

नवयुवक के बारे में जार्ज ने जो कुछ कल्पना की, वह यूरोपीय महा-युद्ध के उन विनाशकारी दिनों में कोई असाधारण बात न थी। पोलेगोन

का हरा-भरा फलों-फूलों से लदा जंगल उसके सामने ही काट-छांटकर कई कब्रिस्तानों के रूप में बनाया गया था। फ्लैण्डर्स की विगत घनघोर लड़ाई में काम आए हुए हज़ारों लहूलुहान योद्धाओं को तो वह अपने हाथों ही दफना चुका है ; हज़ारों माताओं, बहिनों और विधवाओं को अपने पति, पुत्रों और भाइयों की समाधियों पर बिलखते देखने का मानो वह अभ्यस्त हो गया है।

तो भी बूढ़े माली के मन में हो आया, क्यों न वह स्टैला के पास जाकर उसकी इस व्यर्थ की छानबीन पर खेद प्रकाशित करे ! किन्तु गुलाब के लाल-लाल फूलों तथा भांति-भांति की नीली-पीली बेल-पत्तियों से मानव-देहों को प्रतिदिन ढकनेवाले पैसेनडेल कब्रिस्तान के प्रत्येक माली पर यह प्रतिबन्ध लगाया गया है कि वह किसी भी दर्शक को, स्त्री हो या पुरुष, इस विस्तृत चारदीवारी के भीतर नितान्त खुला छोड़ दे, जिससे आगन्तुक व्यक्ति को अपने मृत बन्धुओं के प्रति भाव-प्रदर्शन करने में किसी प्रकार की असुविधा न हो।

वसन्त की एक सुहावनी दुपहरिया के समय चार्ल्स और स्टैला ने जब परस्पर एक-दूसरे को भावी जीवन-संगी चुना था, तब विवाह के उपरान्त समस्त यूरोप के प्राकृतिक दृश्यों के भ्रमण आदि की न जाने कितनी बड़ी-बड़ी योजनाएं बना डाली थीं उन्होंने वहीं टेम्स नदी के किनारे बैठे-बैठे एक ही घड़ी में !

तभी समस्त यूरोप के शासक-वर्ग में भीतर ही भीतर नर-संहारी काण्ड की जो भीषण खूनी प्यास खौल रही थी। उससे सर्वथा अपरिचित सुकुमार हरिण-सी यह जोड़ी पीठ पर झोला लादे इंग्लैण्ड के वन-उपवनों में एकसाथ फूल-पत्तियां बटोरती रहती। ऐसा कोई झंझावात—कोई तूफान अकस्मात् आ घिरेगा जो इन एक डंठल में गुंथे दो पुष्पों को जहां-तहां झटक-पटक देगा, यह प्रणय-रस में विभोर स्टैला और चार्ल्स नहीं जानते थे।

इन दोनों के विवाह की तिथि गत क्रिसमस से पूर्व नवम्बर मास में

निश्चित हुई थी। सहसा स्टैला के मधुर स्वप्नों पर तुषारपात हो गया, उसका नन्हा-सा कोमल हृदय छिन्न-भिन्न हो गया।—बारह मास पूर्व आज के ही दिन से चार्ल्स का कुछ पता न था।

स्टैला और उसके कई एक बन्धुओं के प्रायः सभी विशेष सरकारी दफ्तरों में अच्छी तरह जांच करने पर भी जब यही निराशापूर्ण उत्तर मिला कि चार्ल्स का क्या हुआ, पता नहीं चलता, तो अभागी युवती को विवश होकर स्वीकार करना ही पड़ा कि उसका प्रियतम—उसका प्यारा चार्ल्स—युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ है!

अन्तस्तल में दहकती ज्वाला की लपटें और ऊपर से जुलाई मास की दोपहरी की तीक्ष्ण धूप! कोमलांगी स्टैला का तन-बदन पिघलने-सा लगा। पसीने से तर शिलालेखों, संगमरमर-निर्मित समाधियों को देखती-खोजती वह न जाने बाग के किस छोर तक पहुंच गई; किन्तु कहीं भी किसी भी शिला पर चार्ल्स का नाम नहीं!

हा! आज आंसू बहाने के लिए भी वह प्रिय के मज़ार को न पा सकी! स्टैला रेत पर पड़ी मछली की भांति तिलमिला उठी—चार्ल्स! चार्ल्स!—उसकी व्यथा-भरी चीखों की प्रतिध्वनि की उन अनेकों सुरक्षित हड्डियों के ढेरों ने!

दुःख की पराकाष्ठा में भी मनुष्य की अन्तरात्मा उसे सर्वदा विश्राम की ओर—शान्ति की ओर—ही प्रेरित करती है। गर्मी तथा शोक से सन्तप्त-विह्वल स्टैला तनिक कब्रिस्तान की पार्श्ववर्ती सीमा के एक ओर हरी-घनी झाड़ी के समीप जा पहुंची। शीतल वायु के एक झोंके ने जैसे उसके दुःख के प्रबल वेग में क्षणिक बांध-सा लगा दिया। माथे का पसीना पोंछकर वह ज्योंही खड़ी हुई, उसकी दृष्टि उसी झाड़ी के ऐन नीचे की कब्र पर के शिला-लेख पर जा पड़ी जो साधारण लाल इंटों से बनी थी।

"महासमर (फ्लैण्डर्स) में वीरगति को प्राप्त हुए एक अज्ञात युवक सैनिक की स्मृति में।"

इसी वर्ष ! बिना नाम का युवक सैनिक और कौन हो सकता है ? स्टैला बरबस उन लाल पत्थरों से चिपट गई ! रोते-रोते उसका वक्षस्थल भीग उठा !

स्टैला का जीवन अब एक सती-साध्वी नारी का एकरस जीवन था जिसे शीत की मधुरता, वसन्त का सौरभ और ग्रीष्म की मनोहारिणी संध्या नहीं सुहाती । । सैकड़ों लम्बी-लम्बी रातें तारे गिनते, अनेकों लम्बे-लम्बे दिवस निश्वास भरते लंदन नगर के एक कोने में चुपचाप कट जाते, किन्तु जुलाई मास के प्रारम्भ में ही न जाने कहां से एक अद्भुत शक्ति-सी उस भग्न-हृदया में संचारित हो उठती ।

इंगलिश चैनल को पार कर प्रतिवर्ष १५ जुलाई के दिन स्टैला शुभ्र वस्त्र धारण किए अपने इच्छित स्थान पर सवेरे ही जा पहुंचती । पैसेनडेल ही अब स्टैला की दृष्टि में सबसे बड़ा तीर्थस्थान था ।

सारा दिन उस लाल ईंटों से बनी कब्र के सिरहाने गुज़ारती; भांति-भांति के गुलदस्तों से उसे सजाती, परिक्रमा करती और फिर बैठकर पुरानी स्मृतियों को स्वयं ही दुहराती । उस घड़ी चार्ल्स मानो स्टैला के सम्मुख जीवित हो उठता । उसके इस कोमल स्पर्श को पाकर वह जड़ समाधि भी न जाने कितनी पुलकित होती !

सांझ होने को आती । सूर्य की अन्तिम किरणें बेल, पत्तियों, फूलों पर चमकने लगतीं तो स्टैला चौंक पड़ती ; सजल नयनों से वह अन्तिम बार समाधि की ओर देखते हुए एक करुण गान गाकर विदा लेती जिसका भावार्थ कवि के शब्दों में निम्नलिखित है :

अब छलकत दिन-रैना सजनी !
कासों बिथा कहिए मोरी सजनी !
जल बरसे हिय-आग बुझे ना
अब सपना-सी भई खेलत उलट दई ।

विरहिणी की दशा पर बूढ़े माली जार्ज की आंखों से भी दो आंसू ढुलक जाते।

पूरे पांच वर्ष बीत गए।

इस बार स्टैला ने जी खोलकर श्वेत कमल और लिली (नर्गिस) के फूल मंगाए। १४ जुलाई का सारा दिन वह बड़े परिश्रम से कमल-फूलों के चक्र तथा लिली के गुलदस्ते बनाने में लवलीन रही।

संध्या को बिजली के प्रकाश में अगले दिन प्रातः पहनकर जानेवाली पोशाक पर स्टैला इस्त्री कर रही थी, इसी समय पड़ोस का लड़का विली एक पीले रंग का लम्बा-सा लिफाफा फेंककर भाग गया। "मिस स्टैला विन्डसन"......

"नहीं! नहीं! यह कभी नहीं। यह कैसे हो सकता है?" स्टैला चीखती हुई उन श्वेत कोमल पुष्पों पर मूर्छित हो गिर पड़ी। और फूल मानो शर्मिन्दा होकर जहां-तहां कमरे में बिखर गए।

यह एक विश्वस्त सरकारी सूचना थी कि चार्ल्स जीवित है। महायुद्ध में एक भयंकर आघात लगने पर उसकी स्मरणशक्ति विनष्ट हो गई थी। इसके बाद वह आस्ट्रेलिया भेज दिया गया। चार वर्ष बाद अब उसे लंदन के मेण्टल हास्पिटल में इलाज के लिए भेजा गया और कुछ ही मास पूर्व उसका आपरेशन हुआ है जिससे चार्ल्स की स्मरणशक्ति पुनः लौट आई है।

यद्यपि अभी वह दुर्बल है, किन्तु स्टैला की याद दिन-रात बराबर किया करता है।

माली जार्ज एक दिन आश्चर्यान्वित हो भयभीत-सा हो उठा, मानो वह कोई स्वप्न अथवा भूत-प्रेतों का खेल देख रहा हो।

गर्म वस्त्रों में लिपटे वही प्रेमी-युगल फूल लिए फाटक के बाहर खड़े थे;

किन्तु आज स्त्री के मुख पर झुर्रियां और पुरुष के बालों में सफेदी आ गई थी ।

सदा की भांति स्टैला और चार्ल्स प्रतिवर्ष अपने बन्धु की समाधि पर स्नेहांजलि अर्पित करने जाते हैं ; किन्तु उस बेनाम कब्र के चारों ओर कोई नहीं मंडराता—फूल चढ़ाने कोई भी नहीं आता ।

हसन

एक युग-सा बीत गया, जब बालक हसन रोहती के इर्द-गिर्द चक्कर काटता फिरता और नाज़ से भरपूर ऊखल और छाज में मुट्ठियां भर-भरकर मिट्टी और कंकड़ डालकर व्यर्थ ही मां को परेशान किया करता। वे दिन भी तो न जाने किस अदृश्य पर्दे में छिप गए, जब हसन गांव के आवारा लड़कों के संग दिन-भर निठल्ला-सा घूमा करता। शहतूत और गिलास के पेड़ों पर हर घड़ी लटके रहना और बार-बार धड़ाम से नदी के शान्त जल में कूद पड़ना! बस, केवल यही उसकी दिनचर्या थी, भले ही क्यों न उसके पीछे-पीछे रोहती 'हसन, हसन' कहकर चिल्लाती फिरे।

सचमुच उसके बाद तो हसन बहुत ही बिगड़ गया था। शीतकाल आने से कुछ पहले जब उसकी मां, बहिन, भौजाई आदि सब धान समेटने, सूखे पत्ते और गोबर एकट्ठा करने में लगी होतीं, तो बेहया हसन उस समय केसर के नीले-पीले सुरभित खेतों के समीप अपने बेकार दोस्तों की टोली में बैठा ताश खेलता होता, अथवा कभी अपनी छोटी भतीजी आशी को पीठ पर लादे मस्त घूमता रहता।

आखिर कब तक रोहती यह सहन करती कि उसका एक बेटा तो बूढ़े बाप के साथ खेती-बारी में पसीना बहाकर काम करे और दूसरा घर बैठा मौज उड़ाए! भला, वह कब तक अपने बीस वर्ष के जवान बेटे को सांड-सा निकम्मा घूमने देती और कितने दिनों तक उसके इन अपराधों को बचपन की गुस्ताखी समझकर क्षम्य मानती रहती! घर के दूसरे लोग हसन की इन करतूतों पर विशेष ध्यान न देते थे, क्योंकि रोहती खुद ही अपने बेटे के

निकम्मेपन से शर्मिन्दा होकर उसे आवश्यकता से अधिक डांट-फटकार बतलाती रहती थी। कभी-कभी तो छड़ी से पीटने तक की भी नौबत आ चुकी थी।

जब वही निकम्मा हसन एक शान्त प्रभात वेला में एकाएक केवल एक कम्बल साथ लेकर काम करने के इरादे से सचमुच ही घर से चल दिया, तो उसकी मां संज्ञाहीन-सी हो गई और भीतर ही भीतर उसका कलेजा कांप उठा। इस बीच में कितने ही सुहावने वसन्त आए, लाल-पीले और सफेद फूलों से झरते पेड़ों तले सारे गांव ने मंगलोत्सव मनाए। गर्मी के दिनों में जब हसन की उम्र के नटखट बच्चे फलों के बोझ से झुके हुए वृक्षों पर ऊधम मचाते अथवा नदी के शीतल जल में छपाछप-छपाछप कोलाहल करते या पतझड़ के दिनों में जब भारी-भारी चूड़ियों की झनकार के साथ सुर मिलाकर धान कूटती हुई ग्राम-वधुओं के आसपास उनके बालक मुर्गी के बच्चों के साथ क्रीड़ा कर रहे होते, तो एक टूटी-फूटी चटाई पर नाज की रखवाली करती हुई हसन की मां उनींदी-सी दशा में अनेक स्वप्न देखा करती। रह-रहकर हसन की वे शरारतें, उनपर उसका वह गाली-गलौज, वह मार-पीट—ये सब स्मृतियां उसके हृदय को छलनी बनाया करतीं। वियोग की घड़ियों ने हसन को मां की दृष्टि में इतना अधिक प्रिय बना दिया कि वह नित्य ही सामने के धूलि-धूसरित पथ पर अपने प्रवासी बेटे की बाट जोहा करती—एक बार! केवल एक बार यदि उसका बच्चा घर आ जाता!

यह संसार दूर से इतना सुहावना, इतना कोमल और इतना सरस क्यों जान पड़ता है? जो नहीं है, उसे ही पाने की प्रबल आकांक्षा मनुष्य को हर घड़ी क्यों घेरे रहती है? मानव की यह मृगतृष्णा क्या दयनीय नहीं है?

ऊंचे-नीचे अनेक बीहड़ जंगलों को पार करती हुई मोटर बस किसी असीम अजगर के समान लेटी हुई जम्मू-कश्मीर-वेली रोड पर भागी चली जा रही है। घनघोर गर्जन करती हुई बर्फीली नदी चन्द्रभागा के आरपार दोनों ओर ऊंची-ऊंची निस्तब्ध पर्वतश्रेणियां फैली हुई हैं, जिनका मानो न

कहीं आदि है, न अन्त। ये पर्वतश्रेणियां इस समय ग्रीष्मऋतु की तीक्ष्ण धूप से तप रही हैं। मीलों तक जो गहरा सन्नाटा छाया रहता है, उसके बाद कभी पहाड़ी चरवाहे, कोई राहगीर अथवा किसी जंगली पशु-पक्षी की छाया-सी नज़र आती है, या कभी घंटों के पीछे इधर से कोई दूसरी गाड़ी धूलि के अम्बार उड़ाती भों-भों करती निकल जाती है। पेट्रोल की गन्ध, स्थान की कमी और दोपहरी की गर्मी के मारे पिछली सीटों के व्याकुल यात्री ऊंघ-ऊंघकर एक-दूसरे के कन्धों पर गिर रहे हैं।

एक ही झपक में हसन को ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह पुनः लाहौर की दूकान पर बैठा लोहा तोल रहा है, गर्म लू की लपटें उसके समस्त शरीर को झुलसा रही हैं, प्यास के मारे गला सूखा जा रहा है और उधर से मालिक आवाज़ें दे रहे हैं, 'ओ हसन ! जाओ स्टेशन पर, माल आया है, बिल्टी छुड़ा लाओ !'······सांझ होने को है, दूकान के अन्य नौकर-चाकर प्रसन्नचित्त, लम्बे-लम्बे डग भरते, सड़क के जन-समूह को चीरकर उतावलेपन से अपने घरों की ओर बढ़े जा रहे हैं। और हसन ! उसे छुट्टी कहां है ! उसे तो अभी मालिक के घर जाकर गौओं का चारा तैयार करना है, मकान की सफाई करनी है, और भी न जाने क्या-क्या करना है। हसन नींद में बड़बड़ा उठा, 'या खुदा ! रहम कर !' इसी समय एक झटके-से अचानक उसकी आंख खुली, तो उसे यह जानकर परम सन्तोष हुआ कि वह सब एक स्वप्न ही था। वास्तव में बात यह थी कि मुसाफिर लोग ड्राइवर को मोटर की छत पर मछलियों की पेटी लाद लेने पर बुरा-भला कह रहे थे। किन्तु हसन के मन में तो आज उल्लास है। बरसों के बाद घर लौटने के कारण उसका चित्त आह्लादित हो रहा है, उसे क्योंकर आज गर्मी, सर्दी, स्थानाभाव, दुर्गन्ध आदि अखरे ! उसे तो यात्रियों की बौखलाहट पर आश्चर्य हो रहा है।

अनेक चक्कर काटती हुई मोटर बस एक लम्बी सुरंग को पार करके पीरपांचाल पर्वत के उच्च शिखर पर रुकी और ठंडी हवा के झोंकों के कारण सब यात्री अपने-अपने गरम कपड़े खोज-खोजकर ऊपर लेने लगे। हसन इस अवकाश में गाड़ी से नीचे उतरकर सुरंग से कुछ ही कदम की दूरी पर

खड़ा हो सामने की ओर आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। वह वैरीनाग, वह मार्तण्ड, वह अच्छाबल! नील नभोमण्डल के नीचे, छोटी-छोटी पर्वतमालाओं के विस्तृत घेरे में, दूर तक फैली हुई कश्मीर की हरी-भरी घाटी, स्थान-स्थान पर दुग्धफेन-सी धवल जल-धाराएं फेंकते हुए झरने, नदी-नाले कमल-दलों से पूरित सरोवर, धूप में लहलहाते हुए धान के खेत! अहा! यही है उसका प्यारा देश! अपनी जन्मभूमि का इतना मोहक सौंदर्य देख हसन मुग्ध हो उठा। इसी समय सेल्फ को दबाते हुए ड्राइवर ने एक ऊंची आवाज़ में कहा, "चल ओए! कशमीरिआ चलसें के नहीं।"

बस फिर से उसी तीव्र गति से आगे बढ़ने लगी और ज्यों-ज्यों एक-एक करके मील कटने लगे, हसन की आंखों के आगे नंग-धड़ंग बच्चों का उछलना, ग्रामीण कन्याओं का गीत गाना आदि मनमोहक चित्र खिंचने लगे। उसका चित्त खुशी के मारे नाचने लगा। जब वह घर पहुंचा, तो पाम्पुर गांव के लकड़ी के कच्चे मकानों की घास-फूस उगी छतों की ओट में सूर्य की अन्तिम किरणें आलोकित हो रही थीं।

इन पांच वर्षों के व्यवधान में ही इस छोटे-से गांव की बाहरी-भीतरी अवस्थाओं में कितना भारी अन्तर हो गया है! नदी के इस पार पुल के समीप एक हिन्दू नानबाई और दो-तीन सब्ज़ी-फरोशों की दूकानों के बदले आज एक खासा लम्बा बाज़ार-सा बन गया है। सड़क के आसपास उस खुले मैदान में, जहां आज से पांच साल पहले ग्रामीण बच्चे अपनी भेड़-बकरियों को खुला छोड़कर मस्त लोटा करते थे, आज तीन इमारतें खड़ी हैं: कचहरी, डाकघर और स्कूल।

इधर मुहल्ले में भी वह चहल-पहल नहीं रही। सुभाना और सदीका शहर में रेशमखाने के कुलियों में भरती हो गए हैं और आहधु, रमज़ाना, गफारा आदि पिछले दिनों हैज़ा के आक्रमण में चल बसे हैं। यही नहीं, स्वयं हसन के पिता का देहान्त हुए भी आज दो वर्ष हो चुके हैं। उसकी गैरहाज़िरी में उसकी बहिन की शादी हो गई है, और अब वह अवन्तीपुर में

अपने बच्चों और पति के साथ रहती है। इधर घर की प्रत्येक वस्तु पर उसकी भौजाई का अधिकार हो गया है, और उसकी मां को चाय की एक प्याली भी भौजाई की अनुमति लेकर ही मयस्सर हो सकती है। हसन की छोटी भतीजी आशी और भतीजा अहमदू इतने बड़े हो गए हैं कि अपने चचा के पास आने में भी सकुचाते हैं।

हसन ने घर आते ही यह सब देखा-सुना, तो उसका चित्त उद्विग्न-सा हो उठा। पहले ही दिन जब वह दोपहर में गांव का चक्कर लगाने गया, तो समूचे गांव में उसे कोई भी ऐसा हार्दिक मित्र दिखाई न पड़ा जो उसके आगमन पर आनन्दोल्लास से खिल उठता। बाजार के सब लोग अपने-अपने कारोबार में व्यस्त थे। लड़कों के स्कूल, कचहरी, डाकघर में एक विचित्र प्रकार की मिनमिनाहट-सी हो रही थी। लौटते समय जब वह नीले-सफेद फूलों से ढके कब्रिस्तान की ओर से गुज़रा तो उसे अपने पिता की और पुराने संगी-साथियों की याद रह-रहकर सताने लगी। हसन का सम्पूर्ण भूतकाल मानो इसी कब्रिस्तान में मिट्टी की मोटी तह के नीचे छिपा पड़ा था। जब और कहीं जी न लगा, तो व्यथितचित्त हसन फिर एक चादर ओढ़ उसी पूर्वपरिचित घर में अजनबी की भांति एक कोने में पड़ रहा।

किन्तु उसी सायंकाल को हसन ने देखा कि पूर्ण चन्द्र की ज्योत्स्ना में जहां-तहां खिली पुष्प-लताएं, नदी का जल, उस पार के खेत सब चमक उठे हैं। पक्षियों के कलरव और ग्राम-कन्याओं के गीतों ने मिलकर चारों ओर एक जीवित गूंज-सी फैला दी है। मनचले युवक बच्चे नदी में छलांगें मार रहे हैं, जगह-जगह ताश और शतरंज की टोलियां जुटने लगी हैं। यह सब देखकर सहसा तरुण हसन का हृदय भर उठा; वह चाहे तो अब भी इस नई दुनिया के साथ नये सिरे से अपनी जगह बना सकता है।

रोहती के बड़े बेटे अलिया ने सांझ को घर लौटकर अपनी स्त्री और बच्चों के सामने ही अपनी मां को व्यंग्यपूर्वक यह सूचना दी कि हसन छुट्टी लेकर घर नही आया, बल्कि वह तो नौकरी छोड़कर भाग आया है। इस

समाचार की सत्यता सिद्ध करते हुए जब उसने कहा कि मैं यह बात अभी-अभी सुबरा क्लीनर से सुनकर आया हूं, तो रोहती हतप्रभ-सी होकर एकटक देखने लगी। उसकी आंखें शर्म के मारे मानो गड़-सी गईं। इसके दूसरे ही दिन जब पड़ोसिन जैनी ने मानो सहानुभूति के शब्दों में रोहती को सुझाया कि हसन का इस तरह मुहल्ले की वधुओं और कन्याओं के पास हर घड़ी बैठे रहना उचित नहीं, मर्द-बच्चे को ये बातें शोभा नहीं देतीं और जब उसी रात अहमदू ने आकर अपनी दादी से कहा कि बड़ी अम्मा, क्यों नहीं हसन काका अपना नाम सड़क मरम्मत करनेवाले या फूल चुननेवाले कुलियों में दर्ज करा लेते, तो ये सब बातें वृद्धा रोहती के अन्तस्तल में शूल की भांति चुभ गईं। उसके जी में हो आया—हाय, कहां है वह घड़ी, जिस रात एकाएक हसन ने घर आकर मां को अचम्भित कर दिया था; और वह भीगे हुए वक्षस्थल से, बढ़कर परिपक्व हुए उस मास-पिंड को विलग नहीं करना चाहती थी। किस गर्व के साथ उसने न केवल घर में, बल्कि गांव-भर में यह समाचार सुनाया था कि अब उसके हसन की गिनती कोई ऐरे-गैरे व्यक्तियों में नहीं हो सकती, क्योंकि वह तो अब एक बड़े नगर में एक बड़ी दूकान का कारिन्दा है।

थोड़े समय के भीतर ही हसन फिर गांव के उन छोटे नन्हे बच्चों से लेकर शतरंज खेलनेवाले बड़े-बूढ़ों तक का मित्र बन गया। यही नहीं, मुहल्ले में नाई की बहू, शमशुद्दीन बढ़ई की लड़की और खैरी की मां को यदि बाजार से नमक-तेल से लेकर कंघी-सुरमे तक की आवश्यकता पड़ती है, तो हसन हाजिर होता है।

कच्चे-पक्के सेब, नाशपातियों, सूखे बादाम और खुरमानियों से उसके लम्बे कुर्ते की जेबें मुहल्ले के बच्चों में बांटने के लिए सदा भरी रहती हैं। वह इसमें गर्व अनुभव करने लगा है; किन्तु वह यह नहीं जान सका कि उसे अब भी 'निकम्मा, निठल्ला' नामों से क्यों पुकारा जाता है और घर में घुसते ही उसकी मां का उसपर रोषपूर्ण व्यवहार क्योंकर है।

श्रावण, भादों, आसोज बीत गए। कार्तिक मास के आरम्भ होते ही चिनार, सफेदे के वृक्षों की घनी हरियाली क्रमशः लाल, सुनहरे रंग के सूखे पत्तों के ढेरों में परिवर्तित हो गई। उत्तरीय पर्वतों की ओर से एक वेगवती ठंडी वा बहने लगी। पतझड़ के इन उदासी-भरे दिनों में जब समूची घाटी अपना सम्पूर्ण श्रृंगार उतारकर विरहिणी की भांति बैठ गई तो पाम्पुर की उस उजड़ी भूमि में फिर नवयौवन उमड़ पड़ा, मीलों तक फैले हुए रंग-बिरंगे केसर के फूल अपनी अपरिमित सुगन्धि लुटाने लगे।

तीन दिन तक दोपहरी में गीत गा-गाकर फूलों की चुनाई में काम करनेवाले कुलियों के साथ काम करने में तो हसन को विशेष आनन्द मिला; किन्तु चौथे दिन ही फूलों की टोकरी वहीं फेंक वह उसी शतरंज की टोली में जा बैठा। उसकी मां के कानों में यह खबर उस समय पहुंचाई गई जब कि वह मुहल्ले की औरतों के साथ धान समेटते हुए हसन के विवाह आदि की बातचीत कर रही थी। सब एकसाथ हंस पड़ीं; किन्तु उस समय किसी को इस बात का ख्याल भी न आया कि इस हंसी का कितना भीषण परिणाम हो सकता है।

रोहती भागकर गई और शतरंज के खिलाड़ियों के सामने ही अपने जवान बेटे के पास खड़े होकर उसने दोनों हाथ अपने माथे में जोर से दे मारे और चिल्लाकर कहा, "कमबख्त, तू किस घड़ी में पैदा हुआ था ? तू लौटकर यहां आया ही क्यों ?" और फिर वह विह्वल होकर रो पड़ी।

मां का यह रौद्र रूप देखकर हसन सिहर उठा, उसका तन-बदन एकबारगी कांप गया। ओह ! क्या सचमुच ही पिछले पांच वर्षों के प्रवास में वह इसी मृगतृष्णा-सी स्नेह सुधा की चाह में व्याकुल बना हुआ था ? इसी समय उसे लाहौर की दूकान का ख्याल हो आया। वह क्यों न जाकर माफी मांग ले ! इसके साथ ही क्षण-भर में उसे अपना समूचा जीवन निकृष्ट और अपमानित-सा लगने लगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब बुलबुलें और अन्य पक्षी अपने मधुर स्वर से शीतऋतु के आगमन की सूचना दे रहे थे, हसन चुपचाप अपने वतन से

अलग हो गया—डाल वृक्ष से कट गई।

'लाहौर मेटल मार्ट' पर काम करनेवाले पीछे रखे गए कितने ही मुलाज़िम आज उच्चपद प्राप्त कर चुके हैं; किन्तु हसनअली आज भी दस वर्ष पहले की भांति दिन में लोहा तोलने और सांझ को घर का काम करने पर नियुक्त है। रात को जब लारी-ड्राइवर बहुत देर तक नानबाई की दूकान पर ताश खेलते हुए देश-विदेश एवं घर-बाहर हो आने की बड़ी-बड़ी डींगें हांका करते हैं, तो वह झुंझलाकर उठ खड़ा होता है और अपनी उसी आनन्दविहीन कोठरी में, जहां उसके यौवन की स्मृतियां भस्म के रूप में बिखरी पड़ी हैं, रात-भर दुबका हुआ सा पड़ा रहता है, और कभी-कभी उन्हीं केसर के खेतों और उन्हीं पाम्पुर-निवासियों को याद करके कश्मीरी भाषा में एक गीत गुनगुनाया करता है जिसका अर्थ शायद यही है :

"बुलबुल ने आशियाना, चमन से लिया हटा।"

सुर मानो पसलियों से निकलता है।

अंधड़

ढीली-ढाली लट्ठे की सलवार, मैली रेशमी कमीज़ और महीन मलमल के फटे अंचल से कमनीय यौवन को ढके वह उन्नीस वर्षीय सुन्दरी, आंधी-पानी में भीगे, नीड़विहीन चिड़िया के बच्चे की भांति सहसा दिखाई दी, तो बड़े-छोटे, नौकर-चाकर सभी, आंगन में बिछे तख्त के इर्द-गिर्द घेरा डाले आ खड़े हुए।

पतंग, गेंद, पशु, पक्षी आदि की कौतुक-क्रीड़ा का लेशमात्र भी आभास वहां न था, बच्चों का समूह तो शीघ्र निराश हो लौट गया, किन्तु आते-जाते किसीसे भी परिहास, छेड़छाड़, आलोचना, प्रत्यालोचना किए बिना न रुकनेवाली युवक-युवतियों की टोली भी एक-दूसरे का मुंह ताकने लगी।

वास्तव में आधे घूंघट के आवरण में छिपे, कुम्हलाए कमल की पंखड़ियों-से नेत्र, चेहरे का पीलापन, तथा कई दिनों के असंवारे रूखे केशपाश, सब मिलकर, स्फटिक की नाईं, उसके अन्तर का ऐसा भाव प्रकट कर रहे थे, जिसे देख कुछ क्षण तक मानो घर की ऊंची-ऊंची दीवारें तक सिहर उठीं।

व्यंग्य-बाण छोड़ने की इच्छा से आया हुआ सन्तसिंह ही अन्त में हाथ के चिमटे से, उस सन्नाटे को भंग करते हुए भारी स्वर में बोल उठा, "हमारी सगी बहिन है, किसकी मजाल है जो इसकी ओर आंख उठाकर देखे?" प्रतिदिन किसी न किसी ऐरे-गैरे व्यक्ति का विरोध न जाने कैसे उमा भाभी की मुद्रा से विलुप्त हो गया। प्रत्युत वे उसे लड़कियों के घेरे में से खींच निजी कमरे में ले गईं, मुंह धुलाया और 'जाने कब की भूखी है!' कह स्नेहपूर्वक मिठाई की तश्तरी आगे रख खाने का आग्रह किया।

हिमालय की तलहटी में बसा हुआ यह वृहत् परिवार अत्यन्त मौजी स्वभाव का है। घर के आठ-नौ स्थायी सदस्यों के अतिरिक्त गर्मियों की छुट्टियां काटने छः-सात विद्यार्थियों का दल भी इस बार सम्मिलित था। कहीं ताश चलती रहती, तो कहीं बाजा सितार, कहीं तान अलाप, तो कहीं साज-शृंगार।

हंसी-विनोद की इस तरंगित धारा में किसी नवागन्तुक के आने-जाने के समय केवल दो-चार घंटे के कौतूहल एवं उदासी की क्षणिक तरंग के अतिरिक्त कुछ अन्तर न पड़ता था। इसी कारण माया के आसपास स्लेट, पट्टी, किताब, कसीदा, लेकर जांच-पडताल करने की धुन प्रथम दो-चार दिवस ही में समाप्त कर सब कोई, पूर्ववत्, मधुमय झकोरों में डोलने लगे। और इधर बच्ची को दूध पिलाने से लेकर गोदाम, रसोई, सन्दूकों की चाबियों तक के लिए सर्वत्र 'माया, माया !' की पुकार होने लगी। बिना माया के बच्ची दूध नहीं पीती, सब्ज़ी-भाजी बेमज़ा रहती, फुलके फूलते नहीं और घर के सारे काम अधूरे पड़े रहते।

जहां बहुधा किसीके आने-जाने का मार्ग नही पड़ता, ऊपर बरामदे में एक छोटी चारपाई और बिछौना लेकर उसने ठिकाना बना लिया।

"हमारे यहां भी ऐसा गलीचा था, बर्तन थे और कामदानी चदरें भी······बलोचिस्तान में तो मैं बुर्का पहनती थी।"······ऐसी कई बेसिर-पैर की बातें जब कभी यूं ही उस अल्पभाषी मुख से धीरे-धीरे निकल पड़तीं तो सब कोई मन ही मन गप समझकर केवल देखते रह जाते; किन्तु उसकी मन्द-मन्द चाल, सदा नीची पलकें और घिसी-सी रेशमी पोशाक (जिसे ही वह धो-धाकर नित्य पहन लेती) इससे भी अधिक इस भरे-पूरे घर में खाने, पीने, पहनने के प्रति कुछ ऐसा अनासक्त भाव, जिससे किसीको भी उसकी बातों में बढ़ा-चढ़ाकर कहने का और प्रतिवाद करने का साहस न होता।

"उसका पति लड़ाई में मर गया है और पति का बूढ़ा भाई उससे विवाह करना चाहता था,······मां इसकी लड़कियां बेचने की दलाली का काम करती है······जहां-जहां भी इसे बेचा गया, भाग आई······उस दिन दूध

गंगा के निर्जन किनारे की ओर, जहां सांसिओं के घर हैं, अकेले जाते देख, अहमदअली ड्राइवर इसे लिवाकर घर छोड़ गया था।"

परिचयस्वरूप केवल उपरोक्त लहर-सी एक सिरे से दूसरे सिरे तक विकसित हो उठती।···इसके आगे उसके स्वल्प जीवन के रहस्यमय पर्दे को उठाकर झांकने का अवकाश था किसे ?

कैसा धूल-भरा दिन था ! निर्जन बालू तट की भांति, आषाढ़ की उदास दोपहरी दूर-दूर पर्वतमालाओं तक फैली पड़ी थी। बादल कई दिनों से घिर-घिरकर आते और बिना बरसे चले जाते थे। वृक्षों का पत्ता तक भी न हिल रहा था। सामने मैदान में रसविहीन तृणों पर बैठी एक गाय ऊंघ रही थी। पास ही एक पथिक सो गया था। घर के लोगों में से एक मंडली दरी-तकिये लेकर चिनारों की छांह में जा लेटी और कुछ लोग दरवाज़े बन्द कर ताश खेलते-खेलते सो गए। सम्पूर्ण घाटी में जैसे 'धू ! धू ! भागो ! भागो !' का सा स्वर विचरने लगा।

'मर पी ! बोतल के बिना ज़िन्दा न रहेगी' साथ ही दो थप्पड़ों की आवाज़ सुन ताशवाली मण्डली में से, हम दो-तीन लड़कियां दौड़ी-दौड़ी उमा भाभी के कमरे में जा पहुंचीं।

"गिलास, फूलदान, या कांच की अन्य कोई चीज़ भले ही टूट जाती—पर दूध पिलाने की बोतल !"

"और वह भी आजकल लड़ाई के ज़माने में मिलती कहां हैं ?"

"तिसपर हिमाकत यह कि अभी तक नीचे ही नहीं उतरी।"

"जाने दो जी। अधिक अपनत्व का व्यवहार भी इन लोगों को सिर पर चढ़ा देता है, और इतने लम्बे घूंघट में से दिखाई भी क्या पड़े ?"

"घूंघट भी किससे, पिताजी और कृष्ण से !"····एक साथ ही तालियां, कहकहे और हंसी के ठहाके कमरे में गूंज उठे।

मूर्ख माया ! जो इतना भी नहीं जानती कि पिताजी साक्षात् देवता हैं, उनसे घर-भर तो क्या गली-मुहल्ले तक की कोई स्त्री पर्दा नहीं करती और कृष्ण जो लम्बाई में छः फुट बढ़ जाने पर भी उम्र में केवल अठारह वर्ष का है।

"स्वयं अपनी आंखों से कृष्ण भैया के कमरे के आगे मैंने उसे झांकते देखा है। वाह गुरु ! कैसे सफेद दूध-से कपड़े पहनकर, सबके साथ मेज़ पर खाने बैठ जाती है !" मुंह में अगुली दबाते हुए बातचीत के रुख से रसोइया सन्तसिंह उसे 'कलजुगी नारी' की उपाधि दिए बिना न रह सका।

"धत् ! नालायक !" ऐसा कह संतसिंह को तो डांटकर हटा दिया गया ; किंतु "जवान और ऐसी रूपवती लड़की को घर में लाकर पालना खतरे से खाली नहीं"—ऐसा सुझाव भाभी को दे, तेल की कटोरी हाथ में लिए, दबे पांवों ऊपर सीढ़ियों में से जाकर झांकने का कार्य-भार, मैंने स्वयं, अपने ऊपर लिया।

चारपाई के पाये पर पैर रखे वह अपराधिनी-सी निश्चल भाव से, खिड़की से बाहर देखती रही—फिर जैसे सम्पूर्ण देह में थर-थर कंपन हुआ और उसने दोनों हाथों में सिर को कसकर दबोच लिया। फिर धीरे से "सच्चे पातशाह !" "वाह गुरु !" कहते हुए छोटी-सी गठरी खोल, शीशे के टुकड़े में से इन्हीं पिछले दो महीनों में पुनः उभरते कपोलों, चमकीले, संवारे सुदीर्घ केशों, घनी भवों और पलकों को ऐसी तिरस्कार-भरी दृष्टि से उसने देखा कि मै कांप उठी ; लगा, कहीं वास्तव ही में इसे हिस्टीरिया आदि रोग तो नहीं ?

गत रविवार की सायंकाल की प्रार्थना के उपरांत अकारण ही उसके लम्बे घूंघट में से छल-छल ध्वनि सुनाई दी थी और उसी रात माया का पता न था। खोजने पर अगली सुबह नदी के किनारे, एकटक देखती हुई, वह पाई गई।....जज के सामने बयान देते हुए उसकी मां ने भी तो कहा था कि लड़की को उन्माद है।

तेल की कटोरी अकस्मात् मेरे हाथों से छूट पड़ी। माया चौंककर आगे बढ़ आई। स्मरण नहीं, बात कैसे प्रारंभ हुई; किंतु उन नाज़ुक पंखड़ियों-सी पतली अंगुलियों के स्निग्ध स्पर्श से एक लम्बी धुंधली ऊंघ में मेरे आगे घूम गया—किसी अति सुन्दर स्वर्गीय अप्सरा के पीछे, सफेद दाढ़ी-मूंछोंवाला, विकराल दैत्य, प्रभात वेला में, पूर्ण विकसित गुलाब के फूल को मसल देने-

वाले दो भोंडे हाथ, एक मीठी, कुहुकती श्यामा पर झपटता हुआ बाज़ ।

"कभी आप मेरी कमर देखें"—माया के मृदु बांसुरी सरीखे कंठस्वर से सहसा मेरी नींद भंग हो गई ।

"रोज़ दिन में मातमपुर्सी के लिए आने-जानेवालों के साथ रोना-धोना चलता, और उधर सांझ होते ही बूढ़े को भूत सवार हो उठता। भला हो मेरे पुराने नौकर का, जिसकी सहायता से मैंने अपना कंधा उसे छूने नहीं दिया। लेकिन उस रात जब उसका नशा सीमा तक पहुंच गया, तो मेरे साथ उस गरीब को भी बेंत पड़े। फिर बोला—कैसा मातम रचाकर बैठी हो। मैं उसका बड़ा भाई हूं। हमारी जाति में भाई का पूरा हक होता है, और तुम्हें दान-पुण्य में नहीं लाया गया; पांच सौ, पूरे पांच सौ तुम्हारी मां को दिए थे।" तब मैं और न सह सकी। छः महीने की बच्ची को उसी नौकर की गोद में सौंप, तूफान की भांति भाग निकली। इससे पूर्व अकेले कभी कदम बाहर नहीं रखा था। रास्ते पहचाने न थे। सारी रात गलियों, बाज़ारों में भटकते, भोर वेला में, अपने को लारियों के अड्डे के समीप पाया। लारियां कश्मीर की ओर प्रस्थान करने को तैयार थीं। उसी समय देखा, मां और बूढ़ा व्यक्ति मेरा पीछा करते आ रहे हैं, मां संभवतः उससे समझौता कर रही थीं कि लड़की को कहीं घुमा-फिरा दिल बहलाकर, (जिससे यह हाल ही के ताज़े गम को भूल जाए)····ओह ! भरे बाज़ार में जिस तरह बूढ़े ने आकर मेरे दोनों जेब टटोले···और मानो····गुर्राकर कहा, "याद रख, जहां भी जाएगी, भूत-प्रेत की भांति पीछे आऊंगा।"

दूसरे दिन ऊंचे पहाड़ों और बड़ी-बड़ी नदियों को चीरकर मां मुझे जहां छोड़कर चली गई, वह दुमंज़िला घर जेहलम और कृष्णगंगा के बीच बसे हुए, एक पहाड़ी में मुजफ्फराबाद के समीप था। ऊपर की छत में एक अकेले कमरे में अपने को पाकर मैं बहुत प्रसन्न थी, चारों ओर से मंद-मंद पर्वतीय वायु के झकोरे आते रहते, दिन और रात एक निस्सीम शांति में कट जाते। यहां किसी प्रकार की असुविधा न थी। कोई मुझसे बात तक

न करता। दोनों समय एक बारह-तेरह वर्ष की भोली-भाली बालिका, बढ़िया-बढ़िया भोजन परोसकर लाती, और शीघ्र चली जाती। कभी सांझ को एक व्यक्ति संभवतः गृह-स्वामी आता और 'बहिन !, बहिन !' पुकारता।

मेरा अतीत मानो अंधकूप-सा ढका है। अथवा यूं कहें, आकाश ने मुझे फेंका, और मां धरती ने आंचल में पाला है। पीछे जहां भी दृष्टि फेरती हूं, तनिक भी छांह नजर नहीं आती। माया का गला एकाएक रुद्ध हो गया। तनिक चुप रहकर बोली—इसीसे जब कोई मुझे बहिन-बेटी कहकर पुकारता है, तो मेरे अणु-अणु में पुलक भर आते हैं।

फिर एक सांस लेकर—हां ! बीच में दो दिन वह व्यक्ति नहीं आया। वातावरण सुनसान-सा था। लकड़ी की पिछली दीवार के छेदों में से मैंने झांककर देखा, नीचे आंगन में एक अधेड़ औरत रो रही है, और वह बालिका उसके आंसू पोंछ रही है। कुछ समझ न सकी। संध्या को भोजन के समय मैंने लड़की का हाथ थाम लिया, पूछा, "सच कहो, क्या बात है ?"

बालिका की निश्छल आंखों से छल-छल आंसू ढलक पड़े। कांपते स्वर में बोली, "तुम्हारी मां आई थी, और मेरे पिता उसके पांच सौ रुपये चुकाने गए हैं। मेरा भाई नहीं है—इसीसे—नई मां···" इतना कहते हुए वह लजाकर भाग गई।

सुनकर मेरा सिर चकरा गया। रात्रि की निस्तब्धता जब घनी हो आई तो मैंने खिड़की के साथ दुपट्टा बांधा, और नीचे सड़क पर कूद पड़ी। दुपट्टे में से गज़-भर मेरे साथ झटककर आ गया, जिसे मैंने सिर पर रूमाल की भांति कसकर बांध लिया।

घोर अंधियारी, काली रात, ऊंचे वृहत् कगारों तक गहर-गहर उछलती कृष्णगंगा की लहरें। बड़ी-बड़ी भयावनी चट्टानों और कटीली झाड़ियों के मध्य में से होकर न जाने कितने मील बेतहाशा ग्रीष्मऋतु के धूल-धूसरित-वेगवान अंधड़ की तरह भागती गई। उस समय मेरा अंतर-बाहर सर्वत्र वैसा ही धांय-धांय स्वर से भर रहा था। जी चाहता था, ध्वंस कर दूं संसार-भर को; इन सुदीर्घ घने केशों को, और इस अभागी नारी-देह को।

जाने कब तक कई मील इसी तरह भागती गई। अन्त में पूर्व की ओर उजाला हुआ। कुछ दूर पर जेहलम की झलमल धारा दिखाई दी, और साथ ही पुल पर से तीन छाया-मूर्तियां सहसा इसी ओर आती दिखाई पड़ीं। शिकारी कुत्तों के भय से बारहसिंगों की भांति, झट कूदकर मैं एक झाड़ी में उलझ गई। एकाएक मेरी भयानक चीख से वह मधुर-नीरव पर्वतीय प्रत्यूष मानो थर-थर कांप उठा।

"अच्छा तुम !" वही व्यक्ति जो सौदा चुकता कर लौट रहा था, झाड़ी की ओर बढ़ा। "धोखेबाज़ ! नर-पशु !" न जाने कहां से मुझे सिंहनी-सी गरज प्राप्त हो गई। मेरी चीख दो अफरीदी राहगीरों को भी खींच लाई। किस्सा सुनकर उन्होंने उसे ऐसा फटकारा कि तब वह कापुरुष मेरे पैरों पर आ गिरा और हाथ जोड़ने लगा।

इतना कह वह पुनः चुप हो रही और मैंने मुड़कर उसकी ओर आश्चर्य से देखा।

यूनानी मूर्ति-सी अद्भुत लचकीली और तीखी गठन, गौरव से लजीला मुख···हैं। यही उन्मादिनी-सी लड़की जो संकोच में मानो कदम गिन-गिनकर रखती हुई नित्य ही प्रायः पट्टी, स्लेट हाथ में लिए आकर मर्मर स्वर में कहती है :

"मेरी तो बुद्धि कम है ! कब मुझे ऊषा, तारा, कमला आदि बहिनों की तरह पढ़ना-लिखना आएगा ?···मैं भी उन-सी बन सकती हूं क्या ?····"

"शाबाश ! बहुत खूब ! तुम्हारी मां सगी है या···? और जज ने जब तुम्हें बालिग करार दे स्वतंत्र रूप से जहां चाहे रहने का अधिकार दिया, तो उस रात तुम्हें भाग जाने की क्यों सूझी ?" इत्यादि प्रश्न वहीं बीच ही में रह गए, क्योंकि एकाएक भीतर झटक, फटक, खटाखट, तमाम घर के ऊपर से नीचे तक के दरवाज़े, खिड़कियां और बाहर वृक्ष, खम्भे, झाड़ियां तक झूलने लगे—भागो ! दौड़ो ! आंधी-तूफान ! की चीत्कार से बच्चे और युवक-युवतियां चारों दिशाएं गुंजाने लगे।

वायु के प्रबल बोझ से खिड़कियों के भारी पल्ले खींचते हुए माया ने

क्षण-भर दूर-दिगांचल तक ऐसे स्थिर गहन भाव से देखा मानो संपूर्ण घाटी में इधर-उधर ऊंची पर्वतमालाओं से टकराता हुआ वह भीषण अंधड़ का स्वर उसीके मसृण तरुण हृदय से निकल रहा हो! उसे देख किसी क्रुद्ध सर्पिणी की फुफकार अथवा खूंटे से छूटी दूर भागती हुई गाय की शक्ति जिसे कोई थाम नहीं सकता—ऐसी झलक सामने हो आती थी।

अपनी ओर मुझे ऐसे अपलक ताकते देख, माया ने तुरंत सिर का पल्ला नीचे खींच लिया और उसी मंद-मधुर स्वर में हंसकर कहने लगी, "बच्ची का फ्राक समाप्त करके ही नीचे उतरूंगी, भाभीजी को खुश करने का ढंग मैं जानती हूं।"

किन्तु तब मैं सीढ़ियों में खड़ी-खड़ी, किसी अज्ञात की प्रेरणा से लम्बे घूंघट एवं चेहरे के कमनीय आवरण में छिपे उस दया, माया, वत्सलता-विहीन नारी अन्तर की हर-हर थर-थर को पुलक-भर वन्दना कर रही थी।

जीवन-संध्या

सरला के एकसाथ किए गए अनेक प्रश्नों के उत्तर में गंगा ने जब लापरवाही से सिर्फ इतना ही कहा कि मनोहर बाबू कालेज में प्रोफेसर बनकर आए हैं और मनोहर के पिता नहीं हैं, तो सरला आंखें गड़ाकर गंगा के चेहरे की ओर इस तरह देखने लगी, मानो उसका पेंसिल-स्केच खींच रही हो।

हाथों में सोने की चमचमाती चूड़ियां, कानों में सफेद मोती, बदन पर रेशम की रंगीन साड़ी और तिसपर 'मनोहर के पिता नहीं हैं,' ऐसा वज्र-सा कठोर वाक्य कहते हुए न तो गंगा की आंखों में दो बूंद पानी आया और न उसके मुंह से ठंडी सांस ही निकली। क्षण-भर चुप रहने के बाद सरला भीतरी भाव को दबाकर बड़ी-बूढ़ियों की भांति बोली, "बहिन, बेटे की मां भी तो आधी सुहागिन होती है।"

बरामदे से लौटकर जब गंगा ने कमरे के भीतर प्रवेश किया, तो उसका जी पहले के से उत्साह के साथ दरवाज़ों तथा खिड़कियों पर पर्दे लगाने में लग रहा हो, इसमें सन्देह है। सरला की वह कुतूहल-भरी दृष्टि जैसे उसके कलेजे को चीरकर कई पुरानी स्मृतियों को खोज निकालने का प्रयत्न करने लगी। वह चाहती है कि आंख की झपक में बीते जीवन के उन बहुत प्राचीन परन्तु मधुरतम क्षणों की याद को ताज़ा करे। किसी प्रकार बच्चे (मनोहर) के पिता की मूर्ति अपने हृदय-पटल पर अंकित कर दो आंसू बहाए, सास-ननद की झिड़कियों और बोली-ठोलियों को स्मरण कर जी भरकर रो ले और ज़रा इस बोझ को, जो इस समय अकस्मात् ही उसके दिल पर आ पड़ा है, हलका कर ले—उतार दे।

किन्तु अतीत के जितने भी सुख-दुःख-भरे चित्र वह अपने मानसिक नेत्रों के सम्मुख खींचना चाहती है, उतने ही वे छाया की भांति दूर भागते नज़र आते हैं। उनके बदले उसके हृदय के कैमरे में प्रतिबिम्बित हो जाती हैं कुछ और ही तसवीरें। पहले दिखाई देता है, मिट्टी से सना मां-मां करता हुआ एक छोटा-सा शिशु ! उसके बाद आता है, बरसात के किसी दिन पुस्तकें हाथ में दाबे भीगे वस्त्रों से घर लौटनेवाला एक बालक ! और तब मानो उसे प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है, आशाओं का प्रदीप वही तरुण मनोहर, आज का प्रोफेसर मनोहरलाल एम० ए०।

गंगा स्वयं ही अपने को धिक्कारने लगी—अरे ! क्या आज रोने का दिन है ? छी ! और 'बच्चा' के कालेज से लौटने की प्रतीक्षा में एक बार पुनः उसी उत्साह से घर को सजाने लगी।

इन थोड़े ही दिनों में प्रौढ़ा गंगा और नवयुवती सरला की परस्पर काफी बनने लगी है। इस अनमेल जोड़ा की मैत्री का कारण केवल उदारचेता सरला का दुखिया गंगा के वैधव्य-जीवन की करुण कहानियों द्वारा द्रवित होना ही न था, यदि केवल ऐसा, इतना ही होता, तो हंसमुखी और चंचला सरला दो ही दिनों में अपनी नई पड़ोसिन की बातों से उकता जाती।

किन्तु असल बात तो यह है कि गंगा के जीवन-उद्यान में आह्लाद और उल्लास का जो नन्हा-सा पौधा विकसित होने के साथ ही साथ अकस्मात् एक भारी चट्टान के नीचे दबकर मूर्छित और अर्धमृत-सा हो गया था, वह बरसों के बाद आज पुनः इस बेमौसम में, इस वृद्धप्राय दशा में, अचानक लहलहाने लगा है। उसमें फिर से जीवन और सुगन्ध का समावेश हो गया है।

गंगा के मन की चिर-संचित अभिलाषाएं पुत्र के राज्य में अपनी नवयुवती सहेली पड़ोसिन का सहयोग पाकर और भी अधिक उमंगों के साथ जागरित हो उठी हैं। उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखें, जो भरी जवानी के मद-भरे दिनों में आठों पहर सजल रहा करती थीं, आज न केवल नये-नये वस्त्रा-

भूषणों की परख में, अपितु शिक्षिता सरला की देखा-देखी कहानियों की नई-नई पुस्तकों के अवलोकन में भी लगी रहती हैं। वह अब रामायण-महाभारत की कथा-वार्ता छोड़कर 'कुमुदिनी', 'परिणीता', 'नवनिधि' आदि के पढ़ने का भी प्रयास करती है।

सरला को गाने-बजाने का भी काफी शौक है। सितार, हारमोनियम, ग्रामोफोन आदि उसके ड्राइंग-रूम की शोभा के आवश्यक अंग हैं। सो गंगा ने भी अपने 'बच्चा' से कहकर ग्रामोफोन मंगवा लिया है। जिस किसी दिन प्रभात के समय रसिकहृदया सरला अपनी सास से सीखा हुआ ठेठ पंजाबी गीत—'इहा वेरी के वतवी, वे घुमाईयां जोबना !' (ओ अलबेले यौवन ! क्या यही बार है कि फिर भी कभी आओगे ?)—करुण भैरवी स्वर में अपना दिलरुबा लेकर गाने बैठ जाती है, तो उसी समय गंगा भी अपने नये ग्रामोफोन में रेकार्ड चढ़ा देती है, "क्या कारण है अब रोने का ?"

और सरला को इस बात में बड़ा सुख अनुभव होता है कि गंगा पर उसका काफी रोब है।

मनोहर बचपन ही से कठोर नियन्त्रण में पला है। उसके दादा उसे अपने समवयस्क लड़कों के साथ खेल-तमाशों में जाने देना तो अलग रहा, उसकी बालोचित उछल-कूद को भी पसन्द नहीं करते थे। बड़े होने के साथ ही साथ वह पिता के अभाव तथा मां के परावलम्बी जीवन को दिल ही दिल में अधिकाधिक अनुभव करता रहा है। आज भी मन ही मन उसे अपनी उस चतुरता पर आश्चर्य-मिश्रित हंसी हो आती है कि किस खूबी के साथ वह दादी से छीन-छानकर दूध का भरा हुआ गिलास ले लेता था और आधा पीकर बाकी 'जी नहीं है' कहकर मां को जबरन पिला देता था। और भोजन के समय भी वह कैसी ज़िद पकड़ लिया करता था कि 'मां के हाथ से ही खाऊंगा।' दादी और मां के बेतरह बौखलाने पर भी वह तभी भोजन करता था जब एक ग्रास उसकी मां खाए और एक ग्रास उसे मिले।

किशोरावस्था के उन सुनहले दिनों में ही जब उसके अन्य सहपाठी

पढ़ाई समाप्त कर लेने के बाद देश-विदेश घूमने की स्कीमें बनाया करते थे, मनोहर ने अपने जीवन का एक ही ध्येय बना लिया था और वह था किसी तरह मां को पराधीनता के इस जीवन से छुड़ाकर उसे सुखी बनाना। उसकी इसी दृढ़ लगन का यह परिणाम था कि आज एम० ए० पास करते ही मनोहर को प्रेसीडेन्सी कालेज में प्रोफेसरी मिल गई है। और शायद यही कारण है कि उसका मन कालेज के अन्य प्रोफेसरों तथा विद्यार्थियों के साथ हंसी-मजाक, या मनोविनोद में अधिक नहीं लगता। उसका चित्त अधिकतर घर में ही अलमारी में रखी पुस्तकों में, अथवा मां की नई-नई फरमाइशों को पूरा करने में उलझा रहता है।

मनोहर यद्यपि मां की सभी आकांक्षाओं को पूरा करने का भरसक प्रयत्न करता है, और इसमें उसे बड़ा सुख अनुभव होता है; परन्तु जब कभी भूल से अथवा कार्याधिक्य से कोई वस्तु लाने में दो-एक दिन की देर भी कर देता है, तो गंगा एक मानिनी नवोढ़ा बहू के समान मुंह फुलाकर अपने कोप-भवन में जा बैठती है। भोली गंगा नहीं जानती कि वह महाकाल के अमिट विधान से अब तक जीवन के उस तीर पर आ पहुंची है, जहां दुनिया की निगाह में उसका मान, गर्व या रोब उच्छृंखलता कहा जा सकता है। मगर मनोहर मां के जीवन के साथ इतना घुल-मिल गया है कि वह मां को थोड़ा और भी खिजाना चाहता है। उसके जी में आता है कि वह मां की कोई किताब अथवा सीने का सामान किसी ऐसी जगह छिपा दे जिससे वह सारे दिन परेशान रहे; किन्तु पल-भर में ही जब मां की वही सजल-नयना, मलिन-वसना मूर्ति उसके मानस-नेत्रों के सम्मुख आ जाती है, तो एक अबोध शिशु की भांति पीछे से दौड़ा-दौड़ा आकर 'मां !, मां !' कहता हुआ वह उससे लिपट जाता है।

उस समय गंगा के नारी-हृदय का स्वाभाविक अभिमान-रोष, वात्सल्य की नदी की बाढ़ से सारे का सारा बह जाता है, घुल जाता है।

बन्धु-बान्धवों से बहुत दूर, इस बड़ी नगरी के एक कोने में, मां-पुत्र एक छोटी-सी नई गृहस्थी जुटाकर कभी आह्लाद, कभी उल्लास और कभी

ग्रभिमान के साथ दिन व्यतीत कर रहे हैं।

गंगा को न तो भूतकाल का दुःख सताता था ग्रौर न भविष्य की चिन्ता ही। वह ग्रपने को एक उच्च शिखर पर खड़ा पाती थी। वह ग्रपने घर की मालकिन है; वह ग्रपनी खुशी का खा सकती है, ग्रपनी पसन्द का पहन सकती है। उसके इस ग्रखंड राज्य में ग्रब कौन हस्तक्षेप कर सकता है!

ग्रौर बच्चा? ग्रौर बच्चा भी मां की इस स्नेहमयी छाया में ग्रपूर्व शान्ति प्राप्त कर ग्रपने जीवन को कृतकृत्य समझ रहा था। वे दोनों ही पुनीत प्रेम के इस ग्रटूट बन्धन से विलग नहीं होना चाहते थे। किन्तु इस मानव के कोमल हृत्पिण्ड के भीतर कौन-कौन-सी प्रवृत्तियां, कैसे-कैसे उपद्रवजनक विस्फोटक पदार्थ छिपे पड़े हैं, इसे कौन जानता है? कौन कह सकता है कि वे किस समय ग्रचानक उठ खड़े होंगे? हम स्वयं ही नहीं जान पाते। यह कैसी विवशता है! कैसी विडम्बना है!

क्रमशः शीतऋतु ग्रा गई। ठंड ग्रधिक पड़ने लगी। मनोहर ने बड़े दिनों की सारी छुट्टियां कम्बल ग्रोढ़कर बिस्तर पर ग्रौंधे पड़े-पड़े ढेरों पुस्तकें पढ़ने में ही गुज़ार दीं। परन्तु छुट्टियों के ग्रन्तिम दिन—नये वर्ष के प्रथम दिवस की दोपहर को जब वह टालस्टाय की 'ग्रन्ना करेनिना' समाप्त कर ग्रंगड़ाई लेकर उठा, तो उसे ग्रपने चारों ग्रोर कुछ सूनापन-सा ग्रनुभव होने लगा।

बाहर हलकी-पीली घाम ने ग्रनुपम लावण्य फैला रखा था, ग्रौर ग्रांगन में गंगा चौकी पर बैठी ग्रपने घने काले केश सुखा रही थी।

मनोहर एक बार बाहर ग्राया ग्रौर उसके बाद उदासी-भरे मन से भीतर लौट गया। मां के साथ वह भला टालस्टाय की इस ऊंची साहित्यिक कल्पना के सम्बन्ध में क्या बातचीत करे? दोपहरी की निस्तब्ध प्रकृति जैसे उसे ग्रपने साथ एक करने लगी। ग्रन्यमनस्क-सा हो वह ग्रखबार के पन्ने उलटने लगा। ग्रचानक उसे एक बात सूझी। ग्रखबार हाथ में लिए वह मां के पास ग्रा खड़ा हुग्रा ग्रौर बोला, "मां, चलो, ग्राज तुम्हें सिनेमा ले चलें।"

गंगा कुछ विस्मित-सी हो उठी। आज बच्चे को सिनेमा की फुर्सत कहां से मिली है? वह सरला से 'पूरन भगत', 'चण्डीदास', 'राजरानी मीरा' आदि फिल्मों का कथानक सुन चुकी थी, इसीलिए उसका मन भी इस अद्भुत करिश्मे को देखने के लिए ललचा उठा; परन्तु फिर भी प्रकट में उसने यही उत्तर दिया, "तुम जा आओ, भई! मुझे क्या समझ में आएगा?"

"मां, दिन-रात तो तुम रामायण बांचा करती हो, भला सीता की कथा तुम्हारी समझ में न आएगी?" मनोहर ने आग्रहपूर्ण स्वर में कहा।

उस रात जब मां और 'बच्चा' सिनेमा से लौटे, तो आकाश निर्मल था। केवल श्वेत बादलों के कुछ छोटे-छोटे टुकड़े पूर्ण चन्द्र के आसपास छितराए हुए थे। तारागण का एक समूह सम्पूर्ण आकाश में अप्रतिभ होकर फैला हुआ था।

कुछ देर तक अधखुली खिड़की से इस अलौकिक सौन्दर्य को निहार-कर मनोहर कम्बल ओढ़कर सोने का प्रयत्न करने लगा। अब प्राकृतिक और मानवीय दोनों चित्रपट उसकी दृष्टि से ओझल थे; किन्तु अब भी बाकी थी उनकी छाया-सी। सिनेमा-हाल, दृश्य, धरती-माता के मुंह फाड़कर गाने पर गुप्त परिवार का हंसी-विनोद। प्रो० गुप्त वास्तव में सज्जन पुरुष है। कई बार वे कालेज में उससे घर आने का आग्रह कर चुके हैं। उनकी पत्नी भी वहुत मिलनसार और समझदार प्रतीत होती हैं। और मां भी क्या गजब करती हैं! राम-सीता की तसवीरों के आगे बार-बार सिर झुका देना क्या अन्ध-श्रद्धा नहीं है? वे लोग क्या कहते होंगे? मिस गुप्ता कैसी शिक्षित और सभ्य लड़की मालूम होती थी! कमल-विसर्जन का दृश्य देखकर कैसी भावुकता उसके चेहरे से टपकती थी! युवक मनोहर के हृदय में सहसा एक स्वाभाविक तरुण भावना का सूत्रपात हुआ और न जाने वह इन संकल्पों में ही कहां तक उड़ता चला गया।

किन्तु जिस समय युवक मनोहर अपना एक नया संसार बसाने के सुख-स्वप्न देख रहा था, उसी समय सुनसान रात्रि में गंगा रामलीला की पुनीत

कथा को थोड़ी ही देर पहले आंखों के सामने प्रत्यक्ष देख चुकने के कारण प्रेम और भक्ति के सागर में हिलोरें ले रही थी।

अगले ही रविवार को मनोहर प्रोफेसर गुप्त के यहां चाय के लिए निमन्त्रित था। संध्या होने को आई; गंगा को कुछ भी पता न था। वह रूमालों के किनारे मोडने में ऐसी तल्लीन रही कि इतनी देर से आने का कारण बिना पूछे ही कोने में रंगीन फूल काढ़े हुए दो रूमाल और ताज़ी मिठाई की तश्तरी लिए 'बच्चा' के सम्मुख आ खड़ी हुई।

मनोहर स्वयं ही कुछ झिझककर बोला, "मां, यह क्या हो रहा था ?"

"कुछ नहीं, बेटा ! तुम कल रूमाल खोज रहे थे न ? और यह गोले की बर्फी थोड़ी देर पहले ही बनाई है।"

और दिन होता तो मनोहर मां के हाथों की कारीगरी की न जाने कितनी प्रशंसा करता और जान-बूझकर कितनी ही त्रुटियां खोज निकालता; किन्तु वास्तव में आज मनोहर को भूख न थी। कपड़े उतारते हुए रूमालों की ओर देखकर वह बोला, "मां, क्यों तुम योंही दिन-भर काम-काज में लगी रहती हो ? अब हम बच्चे थोड़े ही हैं ?"

मनोहर ने यद्यपि उपर्युक्त बात सरलतापूर्वक कही थी, किन्तु वह उस क्षण यह भूल गया था कि उसकी मां का हृदय एक ऐसे तरल पदार्थ से भरा हुआ है जो ज़रा-सी भी ठेस पाकर छलक उठता है।

गंगा एक गहरी व्यथा को लेकर दूसरे कमरे में भोजन परोसने चली गई।

वैशाख-संक्रान्ति के शुभ मुहूर्त में प्रोफेसर मनोहरलाल की सगाई कुमारी अमृतलता गुप्त बी० ए० से निश्चित हुई है। कन्या-पक्षवालों की ओर से आज सगुन आया है। गंगा के घर सरला के सहयोग से दिन-भर गाना-बजाना होता रहा है। फल, मिठाई इत्यादि से आने-जानेवाली स्त्रियों का यथेष्ट सत्कार होता रहा है। कन्या के विषय में सरला सबको परिचय दे रही है। और गंगा ? गंगा के जीवन में में इस शुभ घड़ी से बढ़कर आह्लाद

का और कौन समय होगा ? वह इस दिन पर क्यों न बलिहार जाए ? जब एक छमछमाती नूपुर-ध्वनि उसके कानों में झंकृत होने लगती है, तो वह उछल पड़ती है ।

काम-काज से निपटकर गंगा ज़रा विश्राम करने के लिए ऊपर खुली छत पर जा बैठी । सामने ही पीपल के हरे-हरे पत्तों की ओट में सूर्य अस्त हो रहा था । अन्तिम किरणों से आकाश के बादल रंग-बिरंगे हो उठे थे । नगर में शोर-गुल मचा था, मगर आसमान जैसे सन्नाटा खींचे चुपचाप खड़ा था ।

गो-धूलि का समय है । दिन-भर के थके-मांदे लोग अपने-अपने बसेरों की ओर लौट रहे हैं । सामने के पीपल के पेड़ पर सैकड़ों चिड़ियां एकसाथ कोलाहल कर रही हैं । पशुओं के झुंड बां-ां-ां-आं की आवाज़ देते हुए किस आशा से भागते आ रहे हैं ! गंगा की आंखें इन सब दृश्यों की ओर हैं; परन्तु उसका चित्त अभी तक अपनी भावी बहू के वस्त्राभूषणों के चुनाव में ही लगा हुआ है । वह कौन-कौन-से सुन्दर आभूषण और कैसी-कैसी नई साड़ियां मंगवाएगी ?

ज्योंही सायंकाल की पीली छाया पश्चिम दिशा में विलीन हो गई, बादलों के समूह की सम्पूर्ण स्वर्णमयी आभा घने अन्धकार में खो गई और क्रमशः पक्षियों का कलरव भी सुनाई देना बन्द हो गया, त्योंही गंगा का हृदय भी सहसा इस नीरव प्रकृति के साथ-साथ जैसे डूबने-सा लगा । उसमें भी जैसे अन्धकार-सा भरने लगा । बार-बार उसके मन में एक प्रश्न-सा उठने लगा, 'यह सृष्टि इतनी सुन्दर होकर भी इतनी सूनी क्यों है ?'

'बच्चा' कहता है, "मां, अब तुम्हें कुछ भी काम नहीं करना पड़ेगा । घर की कोई चिन्ता न करनी होगी । खूब मजे से तीर्थयात्रा करना ।" दिन में कई स्त्रियों ने भी उससे सहानुभूति के शब्दों में कहा है, "बहिन, तुम्हें अब गृहस्थी के धन्धों से क्या लेना है ! आराम से राम का भजन करना !"

हां, ठीक तो है ! मुझे अब इन धन्धों से क्या लेना है ! यह गाना-बजाना, यह सीना-पिरोना, यह सिनेमा-तमाशा, क्या मुझे शोभा देते हैं ?—

भाई-बहिन

"मांजी !...हाय ! मांजी !... हाय !" एक बार, दो बार ; पर तीसरी बार 'हाय ! हाय !' की करुण पुकार सावित्री सहन न कर सकी । कारबन पेपर और डिज़ाइन की कापी वहीं कुर्सी पर पटककर शीघ्र ही उसने बाथरूम के दरवाज़े के बाहर खड़े कमल को गोद में उठा लिया और पुचकारते हुए कहा, "बच्चे, सवेरे-सवेरे नहीं रोते ।"

"तो निर्मला मेरा गाना क्यों गाती है, और उसने मेरी सारी कमीज़ क्यों छींटे डालकर गीली कर दी है ?"

स्नानागार में अभी तक पतली-सी आवाज़ में निर्मला गुनगुना रही थी, 'एक...लड़का...था...वह रोता...रहता..."

"बड़ी दुष्ट लड़की है । नहाकर बाहर निकले तो सही, ऐसा पीटूं कि वह भी जाने ।" मां से यह आश्वासन पाकर कमल कपड़े बदलने चला गया ।

न जाने कितनी मंगल कामनाओं, भावनाओं और आशीर्वादों को लेकर सावित्री ने अपने भाई के जन्म-दिन पर उपहार भेजने के लिए एक श्वेत रेशमी कपड़े पर तितली का सुन्दर डिज़ाइन खींचा है । हलके नीले, सुनहरे और गहरे लाल रग के रेशम के तारों के साथ ही साथ जाने कितनी मीठी स्मृतिया भी उसके अन्तस्तल में उठ-उठकर बिंधी-सी जा रही हैं, और अनेक वन, पर्वत, नदी, नाले तथा मैदान के पार दूर से एक मुखाकृति बार-बार नेत्रों के सम्मुख आकर उसके रोम-रोम को पुलकित कर रही है । कभी ऐसा भी लगने लगता है, मानो सामने दीवार पर लटकी हुई नरेन्द्र की तसवीर

हंसकर बोल उठेगी। सावित्री की आंखों से प्रेमाश्रु छलक उठे। तितली का एक पंख काढ़ा जा चुका है; किन्तु दूसरा आरम्भ करने से पूर्व ही कमल की सिसकियों और आंसुओं ने सावित्री को वहां से उठने को विवश कर दिया।

स्कूल की चीज़ों को बैग में डालते हुए निर्मला के निकट खड़े होकर सावित्री ने कड़ककर कहा, "निर्मल, तुझे शर्म नहीं आती क्या? इतनी बड़ी हो गई है! कमल तुझसे पूरे चार वर्ष छोटा है। किसी चीज़ को उसे छूने तक नहीं देती। हर घड़ी वह बेचारा रोता रहता है। अगर उसने तेरे पेन्सिल-बक्स को तनिक देख लिया, तो क्या हुआ?"

निर्मला सिर नीचा किए मुस्करा रही थी। यह देखकर सावित्री का पारा और भी अधिक चढ़ गया। उसने ऊंचे स्वर में कहना शुरू किया, "रानीजी, बड़े होने पर पता चलेगा, जब इन्हीं दुर्लभ सूरतों को देखने के लिए भी तरसोगी। भाई-बहिन सदा साथ-साथ नहीं रहते।"

मां की झिड़कियों ने बालिका के नन्हे मस्तिष्क को एक उलझन में डाल दिया। आश्चर्यान्वित हो वह केवल मां के क्रुद्ध चेहरे की ओर एक स्थिर, गंभीर, कुतूहलपूर्ण दृष्टि डालकर रह गई।

करीब आध घंटा बाद किंचित् उदास-सा मुख लिए निर्मला जब कमल को साथ लेकर स्कूल चली गई, तब सावित्री को अपनी सारी वक्तृता सारहीन प्रतीत होने लगी। सहसा उसे याद आने लगी कुछ वर्ष पूर्व की एक बात। तब वह नरेन्द्र से क्यों रूठ गई थी? छि:! एक तुच्छ-सी बात पर ...किन्तु आज जो बात तुच्छ जान पड़ती है, उन दिनों उसी तुच्छ, निकृष्ट, ज़रा-सी बात ने इतना उग्र रूप क्यों धारण कर लिया था, जिसके कारण भाई-बहिन ने आपस में पूरे एक महीने तक एक बात भी न की थी! एकाएक सावित्री के चेहरे पर हंसी प्रस्फुटित हो उठी, जब उसे स्मरण हो आया, नरेन्द्र का दिन-रात नये-नये रिकार्ड लाकर ग्रामोफोन पर बजाना और एक दोस्त से दूरबीन मांगकर आते-जाते बहिन के कमरे की ओर झांकना कि किसी तरह इन दोनों चीज़ों का प्रभाव सावित्री पर पड़ रहा है या नहीं!

उसे यह भी याद करके खूब हंसी आई कि कैसे वह मौन धारण किए हुए मिठाई की तश्तरी नरेन्द्र के कमरे में रख आती थी।

टेबल-क्लाथ पुनः हाथ में लेकर काढ़ते हुए सावित्री ने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि अब से वह बच्चों को बिलकुल डांट-फटकार नहीं बताएगी; किन्तु इधर बारह बजे की आधी छुट्टी में खाने के समय फिर कई अभियोग कमल की ओर से मौजूद थे, "निर्मला मुझे अपने साथ-साथ नहीं चलने देती, पीछे छोड़ आती है। 'मन्दाकिनीर पूर्ण धाराये' के बदले कमल किनीर पूर्ण धाराये' गाना गाती है और गधा कहती है।"

मामला कुछ गंभीर न था। और दिन होता, तो शायद निर्मला की इन शरारतों को सावित्री हंसी समझकर टाल देती; परंतु यह उद्दण्ड लड़की सवेरे से ही उसके प्रिय तथा आवश्यक कार्य में बार-बार बाधा डाल रही है! एक हलकी चपत निर्मला के लगाते हुए मां ने डांटकर कहा, "बस, कल ही स्कूल से तेरा नाम कटवा दिया जाएगा। यह सब अंग्रेज़ी स्कूल की शिक्षा का ही नतीजा है। ज़रा-सी लड़की ने घर-भर में आफत मचा रखी है। अभी से भाई-बहिनों की शकल-सूरत नहीं भाती, बड़ी होने पर न जाने क्या-क्या करेगी।" फिर थाली में पूरी-तरकारी डालकर बच्चों के आगे रखते हुए ज़रा धीमे स्वर में कहा, "देखो निर्मला, जब मैं तुम्हारे बराबर की थी, तो अपने भाई-बहिनों को कभी तंग नहीं करती थी, कभी अपने माता-पिता को दुःख नहीं देती थी।" किन्तु यह बात कहते हुए भीतर ही भीतर सावित्री को कुछ झिझक-सी हो आई।

"हम दोनों सीता के घर से जुलूस देखेंगे मां, अच्छा।" कमल ने विनम्र स्वर में अनुमति चाही।

"नहीं जी, क्या अपने घर से दिखाई नहीं पड़ता?" दरवाज़े की ओट में निर्मला खड़ी थी। "कैसी चालाक लड़की है—इसी गरीब को आगे करती है, जब खुद कुछ कहना होता है। जाओ, जाना हो तो।" सावित्री

ने झुंझलाकर उत्तर दिया।

पांच बजे मुहर्रम का जुलूस निकलनेवाला था। पल-भर में चौराहे पर सैकड़ों मनुष्यों की भीड़ इकट्ठी हो गई। सावित्री का ध्यान कभी काले-हरे रंग-बिरंगे वस्त्र पहने जन-समूह की ओर और कभी जुलूस के कारण रुकी हुई मोटरगाड़ियों में बैठे हुए व्यक्तियों की ओर अनायास ही खिंच रहा था। और इधर बालिका निर्मला के होश-हवास एकाएक गुम-से हो गए जब उसे सारे घर में कमल की परछाईं तक नज़र न आई। व्याकुल-सी हो, वह एक कमरे से दूसरे में और फिर बरामदे में पंखहीन पक्षी की नाईं फड़फड़ाती हुई दौड़ने लगी। उसकी आंखों के आगे अंधेरा-सा छा गया। उसे सब कुछ सुन-सान-सा प्रतीत होने लगा। वह मां से कई बार छोटे बच्चों के भीड़भाड़ में खो जाने का हाल सुन चुकी है। आह···उसका भैया···कमल···वह क्या करे?

नीचे की सड़क पर भांति-भांति के रंग-बिरंगे खिलौने, नये-नये ढंग के गुब्बारे, कागज़ के पंखे, पतंग और भिन्न-भिन्न प्रकार के सुर निकलते हुए बाजे लाकर बेचनेवालों ने बाल-जगत् के प्रति एक सम्मोहन जाल-सा बिछा रखा है। कुछ दूर से मानो नेपथ्य में से ढमाढम-ढमाढम ढोल-बाजों की ध्वनि बढ़ती आ रही है। निर्मला इन सब चित्ताकर्षक चीज़ों को बिना देखे-सुने ही भीड़भाड़ को चीरती हुई वेगपूर्वक भागती-भागती सीता के घर भी हो आई; पर कमल तो वहां भी नहीं है! रोते-रोते निर्मला की आंखें सूज आईं; चेहरे का रंग सफेद पड़ गया। आखिर वह हिचकियां लेते हुए रुंधे गले से मां के पास जाकर बोली, "कमल···कमल तो सीता के घर भी नहीं है!"

सावित्री का तन-बदन एक बार सहसा कांप उठा। क्षण-भर में भीड़, मोटर और गाड़ियों के भय से कई अनिष्ट आशंकाएं उसकी आंखों के आगे घूम-सी गईं; किन्तु वह अपने भीरु लड़के की नस-नस से परिचित थी। उसे पूरा विश्वास था कि कमल ज़रूर ही कहीं न कहीं किसी दूकान पर खड़ा होकर अथवा किसी नौकर के साथ जुलूस देख रहा होगा; फिर भी उसने फूट-फूटकर रोती हुई निर्मला को हृदय से नहीं लगाया और न उसे धीरज ही बंधाया, बल्कि आश्चर्यचकित-सी हो, आश्वासन का एक शब्द तक

कहे बिना मानो वह अपनी लड़की की रुलाई को समझने का प्रयत्न कर रही थी। रह-रहकर एक संदेह-सा उसके मन में उठने लगा, 'मुझसे भी अधिक—भला मां के दिल से भी ज़्यादा—किसी और को दर्द-चिन्ता हो सकती है ? और यह निर्मला तो दिन-रात कमल को सताया करती है !'

जुलूस समाप्त हो गया। क्रमशः दर्शकों के झुण्ड भी छिन्न-भिन्न होने लगे। मोटरगाड़ियों का धड़ाधड़ आना-जाना पूर्ववत् जारी हो गया। और सामने ही फुटपाथ पर सफेद निकर और सफ़ेद कमीज़ पहने पड़ोसी डाक्टर साहब के नौकर के हाथ में हाथ लटकाए कमलकिशोर घर आता हुआ दिखाई दिया।

सीढ़ियों में से फिर सिसकने की आवाज़ सुनकर सावित्री ने देखा तो मन्त्रमुग्ध-सी रह गई। कमल को दृढ़ पाश में बांधे निर्मला दुगुने वेग से रो रही है। उसके कोमल गुलाबी गाल मोटे-मोटे आंसुओं से भीगे जा रहे हैं और वह बार-बार कमल का मुख चूम-चूमकर कह रही है, "पगले ! तू कहां चला गया था ? गधे ! तू क्यों चला गया था ?"

सावित्री का हृदय उमड़ आया, पुनीत प्रेम के इस दृश्य को देखकर एक आनन्द की धारा-सी उसके अन्तस्तल में बहने लगी। झरते हुए आंसुओं के साथ उसने कमल की जगह निर्मला को छाती से लगाकर उसका मुंह चूम लिया और कहा, "बेटा, बहिन को प्यार करो। देखो, वह तुम्हारी खातिर कितनी रोई है ! तुम बिना कहे क्यों चले जाते हो ?"

निर्मला का इतना आदर होते देख कमल बोल उठा, "तो क्या मैं वहां नहीं रोया था ?"

"तुम क्यों रोए थे जी ?" मां ने कुतूहलवश पूछा।

"मुझे गुब्बारा लेना था, पैसा नहीं था।"

निर्मला ने दौड़कर अपनी जमा की हुई चवन्नी के पैसों से दो गुब्बारे और दो कागज़ के खिलौने कमल को लाकर दिए और एक बार फिर उसे भुजाओं में जकड़कर कहा, "गधे ! तू चला क्यों गया था ?"

साथी

उन दिनों पंजाब नेशनल बैंक के मैनेजर पं० सूर्यनाथ कुंजरू कलकत्ता तबदील होकर गए थे। प्रायः एक वर्ष से अधिक रहते हो गया, किन्तु उनकी पत्नी तारा का मन वहां किसी प्रकार भी न लगा।

हेरिसन रोड के कोलाहलमय वातावरण में मोटर बसें, ट्रामें, रिक्शा और घोड़ागाड़ियां वेगपूर्वक टनाटन-टनाटन करती भागती जातीं। दूर तक नरमुण्ड ही नरमुण्ड दिखाई पड़ते। और तब तारादेवी आंखें मूंद-कर सोचने लगतीं, यह सम्पूर्ण कोलाहल किसी वृहत् नदी का कलकल-छलछल क्यों नहीं बन जाता? ऊंची-ऊंची गगनचुम्बी इमारतें यदि हरे-भरे पर्वतों का रूप धारण कर लें तो······?

ऊपर की मंज़िल में पारसी, नीचे चीनी, बगलवाले घर में बंगाली और सामने मद्रासी रहते हैं; किन्तु किसीसे किसीको कुछ सम्पर्क नहीं। इस निस्पृहता के कारण ही एक दिन जब सीढ़ियों की रेलिंग के पास खड़ी होकर सकुचाते हुए सामनेवाले घर की लड़कियों ने पूछा, 'किरण कहां है?' तो तारा ने किरण को एकान्त में ले जाकर सावधान कर दिया कि वह इन ईसाई जैसी लड़कियों के साथ अधिक मेल-जोल न बढ़ाए।

किन्तु इसके दूसरे ही दिन स्कूल से लौटकर हांफते-हांफते किरण ने एक सांस में कहना शुरू किया, "मां, ये क्रिश्चियन नहीं हैं, मद्रासी हैं, और इनके इतने-इतने घुटनों तक लम्बे बाल हैं····रवि, ओ रवि, सूर्या से कुछ मत कहना। यदि कोई सूर्या से उसकी मां की बात पूछे, तो रुलाई आ जाती है। मां नहीं है न उस बेचारे की!···"

"अच्छा," अबोध रवि ने बहिन की बात का पूरा अर्थ समझे बिना ही स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया, और किरण की मां आश्चर्यचकित-सी देखने लगी।

रत्ना, सीता, सूर्या गोविन्दराव के दूसरे विवाह से अन्तिम सन्तानें हैं। ढाका ज़िले में बरसों तक एक सरकारी पद पर नियुक्त रहने के बाद पेंशन पाकर कुछ छोटे-मोटे व्यवसाय, शिक्षा आदि के कारण कलकत्ता को ही उन्होंने अपना निवास-स्थान बना लिया है।

बड़ा लड़का रामराव एक टाइपराइटिंग कम्पनी में क्लर्क है, साथ ही बी० ए० की परीक्षा भी दे रहा है। उससे छोटे भाई कृष्णा और मूर्ति कालेज में पढ़ते हैं। रत्ना, सीता और पांच वर्ष के सूर्या को छोड़कर गोविन्दराव की स्त्री की मृत्यु हो गई। इस घटना को हुए आज प्रायः तीन वर्ष बीत चुके हैं।

बच्चों की भाषा कुत्तों और बिल्लियों की भाषा के सदृश होती है। वे एक-दूसरे की बोल-चाल, देश-जाति से नितान्त अनभिज्ञ होते हुए भी अल्प समय में ही परस्पर अटूट सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं।

सीता और रत्ना किरण की मां को मां और उसके पिता को पिताजी कहकर सम्बोधन करती हैं; वैसे ही रवि और किरण भी उनके भाई को दादा और वृद्ध पिता को बाबा कहकर पुकारते हैं।

रत्ना और सीता हरे रंग का फ्राक पहनेंगी, तो किरण सफेद रंग का कैसे पहन सकती है? और यदि किरण के काले बूट आए हैं, तो रत्ना के दादा को भी वैसे ही लाकर देने होंगे।

मां के हज़ार मना करने पर भी किरण, सीता, रत्ना, सूर्या, रवि सब एकसाथ ही स्नानागार में घुस जाते और घंटों ही नाचते-कूदते और चिल्ला-गाकर कोलाहल करते, जिसका अन्त प्रायः यह होता कि उनमें से कोई एक न एक अवश्य रोता हुआ निकलता।

संध्या की अन्तिम किरणें सामने ही खपरैल की छत पर पड़ रही हैं।

कौवे एक कतार में बैठ कांव-कांव करने लगे। आज प्रवासिनी तारा-देवी के मन में उन पक्षियों को एकसाथ बैठे देख बाल्यकाल की न जाने कितनी ही स्मृतियां घिर आईं—जब वह स्कूल से आते ही चुपके से बस्ता रखकर शकुन्तला के घर भाग जाती और घंटों रंग-बिरंगे पत्थर अथवा चिनार के गोल-गोल बीज इकट्ठा करने में बिता देती। और फिर हरी-हरी घास पर औंधे लेटे तिनके कुटकते हुए इधर-उधर की बातें करते कितनी सांझें बीत जातीं, बातें नहीं बीततीं।

वे दिन न जाने कहां ओझल हो गए ! आज उन सखी-सहेलियों में, जिन्हें वह प्राणों से अधिक प्यार करती थी, एक भी सामने नहीं है। शकुन्तला दो बच्चों को छोड़कर दो दिन के बुखार में चल बसी और चम्पा पति और बच्चोंसहित क्वेटा-भूकम्प में....उफ !....

इसी समय कमरे के दरवाज़े बन्द करके रत्ना, सीता और किरण खेल रही हैं। एक कोने में एक जापानी गुड़िया, नन्हे-नन्हे चाय के बर्तन, छोटी-छोटी मेज़-कुर्सियां सजाकर रखी हैं। दूसरी ओर रवि तथा सूर्या गम्भीरता-पूर्वक बाबूजी बने बैठे हैं।

"अच्छा, तो तुम लोग आज हमारे घर चाय पीने आना।" किरण और सीता को निमंत्रण देकर रत्ना स्वयं उन छोटे-छोटे चीनी के बर्तनों में केले, सन्तरे और मिठाइयों के ज़रा-ज़रा-से टुकड़ों को परोसती हुई अतिथि-सत्कार में व्यस्त हो गई।

"सीता, तुम यह आस्मानी साड़ी पहन लो। लाओ, मैं पहना दूं, और मैं यह ज़रीपाड़ की पीली बनारसी साड़ी पहन लेती हूं।" मां की साड़ियों को बक्स में उलट-पुलट करते हुए किरण ने कहा।

"अरे हमारी मां के पास भी तो ठीक ऐसी ही साड़ी थी !" एक लाल रेशमी साड़ी को खींचकर सीता ने कहा। और खेल में निमन्त्रण की बात को वहीं भूलकर रत्ना को खींच लाई, "क्यों दीदी, ऐसी ही साड़ी मां के पास थी न—ऐसी ही लाल-लाल ?"

ऐसा कहते हुए सीता ने किरण के सम्मुख अपने को गर्वित समझा और

उल्लास के मारे उसका मुंह लाल हो गया। किन्तु रत्ना समझदार और कुछ बड़ी है। मां का नाम सुनते ही उठात् उसकी आंखों के आगे करुण स्मृतियां जागरित हो उठीं। अस्पताल जाते वक्त मां ने उसे गोद में लेकर मुख चूमकर कहा था, "रत्ना, सीता और सूर्या को बड़े प्यार से रखना।" और रत्ना अभी कुछ बातें भी ठीक से न कर पाई थी कि लोग उसे लेकर चले गए। इसके कई दिन बाद जब उसके पिता और भाई एक दिन अस्पताल से केवल मां के कपड़े और गहने ही लेकर लौटे···उफ !···तब उसके बाल-नेत्रों में भी प्रलय के चित्र छा गए और अन्त में ज्वालामुखी की सी ज्वाला फूट पड़ी। सिर पटक-पटककर गला फाड़-फाड़कर वह रोई थी, और फिर भी कैसी भयावनी थी वह रात ! ऐसा प्रतीत होता था, सूर्य अब उदय ही नहीं होगा।

दूसरे दिन उठकर उसे मां के कपड़े सहेजने पड़े थे और उनमें एक लाल साड़ी थी···ठीक इतनी ही लाल···ऐसी ही···

उस दिन खेल आदि कुछ नहीं हो सका। रत्ना घर चली गई। और किरण भी हतबुद्धि-सी बाहर मां के पास आ बैठी।

घर की चीज़ों को इधर-उधर तथा मां की साड़ियों को बक्स में से निकालकर उलट-पुलट करने के अपराध में उस रात किरण को काफी डांट-फटकार सुननी पड़ी। इसी कारण प्रायः एक सप्ताह तक वह स्कूल से आते ही पुस्तक खोलकर चुपचाप पढ़ने बैठ जाती, या कभी अनमनी-सी होकर फर्श पर लकीरें खींचा करती।

किन्तु एक दिन मां को प्रसन्न देखकर किरण ने साहसपूर्वक कहना आरम्भ किया, "राव दादा बड़े कमज़ोर हो गए हैं; उनके बाल सफेद होने लगे हैं; उन्हें घर की बड़ी चिन्ता रहती है न ! अब के वह पास भी नहीं हुए और अब बाटानगर में काम करने चले गए हैं। कल सारी रात रत्ना जागती रही है। ज़रा-सी भी आहट होने से उसे लगता था, मानो दादा आए हैं।"

तारादेवी को किरण की गम्भीर मुख-मुद्रा और सरलतापूर्ण बातों से हंसी हो आई। ये लोग अलग रह ही नहीं सकते, कितना भी इन्हें क्यों न रोका जाए। और तब आज न जाने क्यों अनायास ही उनके हृदय में उन मातृहीन पड़ोसी बच्चों के प्रति अत्यन्त स्नेह उमड़ आया।

उन्होंने हंसकर कहा, "कई दिनों से इधर रत्ना को नहीं देखा। उसके घर तू गई नहीं क्या इतने दिन ?"

किरण छिप-छिपकर जाती तो थी रोज़, किन्तु मां के पूछने पर आज क्या उत्तर देना चाहिए, यह निश्चित नहीं कर सकी, इसलिए अकचका गई। तब तक मां ने कहा, "आज शाम को ज़रा बुलाना तो उसे। कई दिनों से देखा नहीं बेचारी को।"

"अभी बुला लाती हूं मां !" कहकर अत्यन्त उत्साह से किरण दौड़कर रत्ना के घर की ओर चली। और फिर उसी दिन से आना-जाना पहले से भी अधिक बढ़ चला।

इसके बाद दोनों परिवारों में घनिष्ठता बढ़ती ही गई। संध्या से पूर्व नित्य ही वृद्ध पिता को लाठी पकड़ाकर रत्ना और सीता (साथ-साथ किरण भी) इधर बरामदे में धूप में बिठाने के लिए ले आतीं। किरण की मां पहले से ही चारपाई बिछवा देतीं और वृद्ध के आते ही सहज भाव से सिर का पल्ला खींच जलपान आदि की व्यवस्था करने लगतीं।

जीवन के आदि से अन्त तक मनुष्य न जाने कितने सम्बन्ध बनाता और तोड़ता चला जाता है; किन्तु इनमें से कुछ एक ऐसे होते हैं, जिनकी याद विस्मृति की सूखी घाटी में कभी-कभी अकस्मात् किसी उच्छृंखल पहाड़ी नाले के समान उमड़कर न जाने कैसी हलचल-सी मचाकर उसे आप्लावित कर देती है। और तब स्मृति के इन मृदु-पावन लघु क्षणों में प्राणी जिस अलौकिक आह्लाद, जिस अद्भुत सौन्दर्य को पा लेता है, वह अकथनीय है।

"कल रात मैंने सपना देखा था, सीता और रत्ना यहां आई हैं, उन्हें बुला दो न मां !" अधीर-सी होकर किरण ने मां के गले में ज्वर से तपते

हुए दोनों हाथ डालकर कहा।

अपनी बच्ची के कोमल हृदय में अनायास उमड़ी हुई वेदना को उसकी मां ने सहज ही समझ लिया। और फिर उसके मन में रह-रहकर वे दिन याद आने लगे जब कलकत्ता से लौटने में कुछ ही दिन शेष थे। संध्या होते ही सुन्दर पलंग पर बिजली के प्रकाश में सब बच्चे उदास-से बैठ जाते। सम्भवतः उनके पुष्प-से कोमल हृदयों में उस नवविकसित प्रेम के छिन्न-भिन्न हो जाने की आशंका जाग उठती थी।

उन्हें उदास देखकर वे हंसकर कहतीं, "रत्ना, लाहौर जाकर एक बड़ा-सा मकान लूंगी और तब फिर तुम लोगों को वहीं बुलवा लूंगी; क्यों, आओगी न ?"

तब उन लोगों के चेहरे खिल उठते। एक-दूसरी को आलिंगन करती हुई वे एक नई सुखद कल्पना में विभोर हो उठतीं, 'लाहौर जाकर हम एक ही स्कूल में पढ़ेंगी, एक ही तरह के कपड़े पहनेंगी। सब लोग कहेंगे तीनों सगी बहिने हैं। एक कमरा हम तीनों अलग लेंगी। सूर्या और रवि को साथ नहीं रखा जाएगा; वे दंगा करते हैं...'

और आने के दिन जब सभी परस्पर मोतियों के हार तथा शीशे की चूड़ियां आदि स्मृति-चिह्न दे-लेकर विदा हुईं, तो मां के हृदय में जैसे कोई कहने लगा, 'सदा के लिए...सदा के लिए...' उसका जी भर आया। संसार में कौन किसका है ? एक चंचल लहर की तरह ये लोग मिलीं और बिछुड़ गईं। मालूम नहीं, अब वे लोग कहां हैं, किस दशा में हैं, कैसी हैं ?

ज्वर-निद्रित किरण की आंखों में आंसू देखकर तारादेवी चौंक पड़ीं। तकिये के पास ही पेंसिल की टूटी-फूटी लिखावट में एक अधूरी चिट्ठी पड़ी थी। उन्होंने उसे धीरे से उठाया। उसमें लिखा था, "प्यारी रत्ना और सीता ! मुझे तुम्हारे सपने आते हैं। जब मैं नहाने जाती हूं, जब कंघी करने लगती हूं, जब खाने बैठती हूं, तब याद आता है, कैसे हम लोग एकसाथ खाते थे, खेलते थे और झगड़ा करते थे ! वह दिन भी याद है, जब हमने दीवाली पर बहुत-से पटाखे छोड़े थे। इस बार मुझे आतिशबाज़ी ज़रा भी

अच्छी नहीं लगी। स्कूल की कोई लड़की अभी तक मेरी सहेली नहीं बनी। कल दो लड़कियां स्कूल के एक कोने में बातें कर रही थीं, तब मुझे रुलाई आ गई, और मैं इतना रोई कि…"

पत्र में केवल इतना ही पढ़ा जाता था, और इसके बाद जो कुछ लिखा था, वह शायद आंसू की बूंद चू जाने के कारण फैलकर अस्पष्ट हो गया था।

और तारादेवी को लगा कि आंसुओं से मिटा हुआ उतना भाग अस्पष्ट होकर और भी स्पष्ट हो उठा है!

दो फूल

"अन्नाजी ! केशी भैया ! ज़रा बाहर आना। बड़ी अच्छी बात है।" इस-पर भी जब मेरे और केशी में से कोई बाहर नहीं आया, तो अगले ही क्षण फिर से आवाज आई, "जल्दी करो न केशी भैया ! तुम तो उठते ही नहीं। बाहर देखो तो सही, कितनी अच्छी बात है !" मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कपिला की यह पतली, चीखती हुई, हांफती-सी पुकार समाप्त ही न होगी।

केशव को जगाना कोई आसान काम नहीं। जितनी बार मुझे बच्चों के कमरे में से होकर जाना पड़ता है, उतनी ही बार "केशवजी, उठो ! केशवजी, उठो !" की रट लगाए रहती हूं, और उसपर भी केशवजी उठने का नाम नहीं लेते; लेकिन कपिला की इस 'अच्छी बात' की उत्सुकता ने उसे पलंग पर और अधिक न लेटने दिया। फौरन उठकर एक ही छलांग में, सामनेवाले पलंग को पार करता हुआ, वह बरामदे में जा पहुंचा; मगर कपिला की पुकार अभी तक समाप्त नहीं हुई थी। वह चिल्लाए जा रही थी, "अन्नाजी, अन्नाजी, बाहर आओ, बड़ी अच्छी बात है !"

आज पहले ही बड़ी देर हो गई थी। अभी तक बच्चों का दूध भी गर्म नहीं हुआ था। थोड़ी देर में इन लोगों के स्कूल जाने का समय हो जाएगा। ये तो बिना मतलब ही 'अन्नाजी, अन्नाजी !' चिल्लाए जाएंगे। जल्दी-जल्दी नहा-धो लूं, तो इनके खाने-पीने का बन्दोबस्त करूं। यह सोचकर मैंने खूंटी से तौलिया और सामने की ड्रेसिंग टेबल से टूथपेस्ट-ब्रश उठाया ही था कि इतने में मुझे कपिला के साथ-साथ छोटे मियां (सुभाष उर्फ भाषी साहब) की भी तुतली-सी आवाज सुनाई देने लगी, "अन्नाजी, अन्नाजी !"

अब तो मुझे बच्चों का फरमान मानना ही पड़ा। तौलिया कन्धे पर डाल और साबुन-टूथपेस्ट वहीं मेज़ पर फेंककर मुझे उस ओर जाना ही पड़ा।

बच्चों के कमरे के सामने ही खुला बरामदा है। कमरे में से गुज़रते हुए मैंने झुंझलाकर कहा, "कपिला, क्या बात है ? आज कुछ काम नहीं करने दोगी ? इस तरह चिल्ला क्यों रही हो ?"

कपिला और केशी दोनों एक स्वर से बोल उठे, "अन्नाजी, आकर देखो तो सही। उस दिन गमले में गुलाब का जो पेड़ लगाया गया था, उससे फूल निकलनेवाला है। देखिए न उसका गुलाबी-गुलाबी रंग भी दिखाई देने लगा है।"

मैंने देखा, सचमुच ही चीनी के उस बेल-बूटोंवाले गमले में, हरी-हरी पत्तियों के घने झुरमुट के भीतर, कांटेदार टहनी के साथ दो कलियां दिखाई दे रही हैं। एक तो अभी बिलकुल बन्द थी और दूसरी साफ गुलाबी रंगत लिए, अधखिली मुस्करा-सी रही थी, मानो बच्चों से इस तरह अपना स्वागत पाकर खुश हो उठी हो।

दूसरे दिन सुबह फिर से वही सब बाते दोहराई गईं। कपिला चिल्लाई, "अन्नाजी, बड़ी अच्छी हो ; जरा बाहर चलकर देखो तो, सारा फूल खिल गया है। कैसा सुन्दर है !"

इसी वक्त मानो अपने जिस्म का छोटा-सा इंजन ड्राइव करते हुए भाषी साहब भी अन्दर आ पहुंचे। उन्होंने कहा, "बला छुन्दल है अन्नाजी !"

उस 'छुन्दल' फूल को देखने की उत्सुकता आज स्वयं मेरे जी में भी थी। सीना-पिरोना बीच में ही फेंककर एक ही छलांग में बरामदे तक जा पहुंची और उस गमले की ओर देखा, तो हृदय नाच उठा। दोनों फूल पूरी गुलाबी रंगत लिए भीनी-भीनी महक के साथ यौवन के उन्माद में हिलारें ले रहे थे। उन दोनों में आज अजीब मोहिनी मस्ती थी। उनमें वह मद दिखाई दे रहा था, जिसके नशे में नवयुवक-हृदय अपना अस्तित्व भी भूल बैठते हैं।

पहाड़ों पर अथवा हरे-भरे मैदानों में रहनेवाले लोगों को दो फूलों की यह कथा शायद बिलकुल निराश ही कर दे; परन्तु, कलकत्ता की चित्तरंजन एवेन्यू के पक्के 'बिज़िनेस सैंटर' में ईंट-पत्थर और सुर्खी से बने ठोस मकाग के बरामदे में इस सुन्दर गमले के इन दो फूलों की कीमत मेरे लिए सचमुच किसी बाग से कम नहीं थी। मुझे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे मेरे घर में आज प्रकृति माता का आगमन हुआ हो। बच्चे भी आज कितने खुश हैं!

फूलों से बच्चों को बड़ा प्रेम होता है; परन्तु छोटे मियां जैसे शरारती बच्चे तो इसे तोड़े-मरोड़े बिना कैसे रह सकेंगे! यह सोचकर मैंने वह गमला पास की एक बड़ी मेज़ पर रखने का निश्चय कर लिया। इस इरादे से मैंने अभी वह गमला उठाया ही था कि सहसा हाथ बढ़ाकर भाषी ने एक फूल बड़ी निर्दयता के साथ तोड़ लिया। मैं बौखला गई; मगर मेरा क्रोध व्यर्थ था, क्योंकि वह भाषी की आन्तरिक निष्पाप खुशी तक पहुंच ही न सकता था।

अब तो पिछले तीन दिनों से मैं बच्चों के बुलाए बिना ही प्रातःकाल सबसे पहले उसी गमले के पास चली जाती हूं। आज चौथा दिन है। मैंने देखा, आज उस अकेले फूल का बुढ़ापा भी समाप्त होता हुआ दिखाई दे रहा है। सब पत्तियां एक-एक करके झड़ती जा रही थीं। फूल की युवावस्था के अवशेषों के रूप में गुलाबी रंग की मुर्झाई-सी पंखुड़ियां अब भी गमले की सतह पर बिखरी पड़ी थीं। फूल की वह सारी शोभा इन तीन ही दिनों में नष्ट हो चुकी थी। उफ्, उसका सारा जीवन ही चार दिनों का था! इन्हीं चार दिनों में वह नवविकसित कलिका बनी, जिसके सामने एक सुनहला आशामय भविष्य था। इन्हीं चार दिनों में उसने यौवन-मद की हिलोरें खाईं, जब उसके समान सुंदर संसार-भर में और कुछ भी न रहा होगा, और अब इन्हीं चार दिनों में वह इतिहास की चीज़ बन गया सा दिखाई देता है।

ओह, मैंने तुझे अपने भाषी से बचाया था; मगर फिर भी मैं महाकाल से तेरी रक्षा नहीं कर पाई! एक क्षण तक बड़े गम्भीर भाव से मैंने उस

मुरझाए गुलाब के फूल की ओर देखा। उसके बाद मेरे शरीर में कंपकंपी-सी दौड़ गई। मानो वह मुझसे कह रहा था, 'क्या तुम्हारे मानव-जीवन का इतिहास भी मेरे समान नहीं है ?'

कपिला बिस्तरे से उठी और सीधी मेरे पास बरामदे में आकर खड़ी हो गई। गमले के निकट पहुंचकर वह कुछ कहने ही वाली थी कि उस मुरझाए हुए फूल पर निगाह पड़ते ही वह स्वयं चुप रह गई। मानो वह छः साल की ज़रा-सी बच्ची जीवन की किसी बड़ी उलझन को सुलझाने का प्रयत्न कर रही हो।

बेकारी में

पूरा एक वर्ष !

एक वर्ष से मैं बेकार घर बैठा हूं। सिर पर पांच-पांच बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, रोटी-पानी का खर्च—कब तक वह बची-बचाई जमा-पूंजी चलेगी !

ओफ ! कभी-कभी तो अत्यन्त निराश हो उठता हूं। जीवन से ऊबने पर कितने ही बुरे विचार आने लगते हैं, किन्तु बच्चों और स्त्री की निस्सहाय अवस्था का ध्यान करके रुक जाता हूं।

कल दोपहर को, 'मार्टन कम्पनी' से एक चिट्ठी भी आ गई कि दो मास बाद आपके प्रार्थनापत्र पर ध्यान दिया जाएगा।

मन ही मन पी गया। क्या मुंह लेकर बच्चों की मां के पास जाऊं ? वह देखते ही प्रश्न करेगी, बच्चे दौड़े आवेंगे और उनके नन्हे दिल टूट जावेंगे। मैंने जो उन्हें कब से बंगला, मोटर आदि की आशा बंधा रखी है !

चिट्ठी जेब में रख सीधा बाथ-रूम में जा पहुंचा, और वहां फूट-फूटकर रोया अपने भाग्य पर। मुझे वह दिन याद आए जब आफिस में कुर्सी पर बैठे चपरासियों और क्लर्कों पर हुकूमत चलाता, घर में नित्य मिठाई-फलों के टोकरों की धूम रहा करती ! क्या वे दिन अब नहीं आने के ? जी चाहता था, अपने कलेजे का दर्द, अपना रुदन सारे विश्व में फैला दूं—मुझ-सा कौन दुःखी है जगत् में !

शायद आध घण्टा बीत चुका, जब मैंने बाहर निकलकर अपनी सूजी

हुई ग्रांखों से देखा, जल्लो मेहतरानी ग्रपनी गोद के बच्चे को वहीं ज़मीन पर बिठाकर मैला साफ करने जा रही है। जाने क्यों, मैं ग्रपने से झेंप-सा गया ग्रौर ग्रनायास ही रूमाल से मुंह पोंछते हुए पूछ बैठा, "जल्लो, तनखाह मिल गई ?"

उसके हाथ में चमकता हुग्रा एक रुपया था जिसको दस बार माथे से छुग्राकर कहा, "जीते रहो बाबूजी, बच्चे बने रहें बाबूजी !"

उस घड़ी मुझे उससे बातें करना सुहाने लगा। मैंने फिर पूछा, "कितने रुपये हो जाते होंगे ?"

"भगवान बनाए रखे बाबूजी ! छः-सात रुपये बन ही जाते हैं बाबूजी, ग्रौर कुछ कपड़े-लत्ते···मांजी बहुत परवरिश करती हैं। ग्रब यह बात है बाबूजी, गरीब मानस कभी रांधे, कभी न रांधें।"—उसने ऊपर निगाह करके कहा। तभी मैंने देखा, जल्लो की दोनों ग्रांखों में बदबू के मारे फुंसियां निकल रही हैं।

मैंने एक बार पुनः सिर से पैर तक उस मलिनता की पुतली को देखा—ग्रत्यन्त मैली ग्रोढ़नी से ढका जिस्म ग्रौर जगह-जगह से फटी सलवार को पतली रस्सी से कसकर बंधी टांगें !

एक हाथ से झाड़ू पकड़े वह कहती गई, "दो पैसे रोज़ के पड़े बाबूजी, कोठड़ी का भाड़ा दो रुपया ग्रौर बाकी बनिया के देने में कट जाते हैं। बनिया का सौ रुपया देना है। मेरे मालिक ने दो भैंसे खरीदे थे मैलेवाली गाड़ी में जोतने को, सो दोनों मर गए। कुछ पर के साल बच्चों की बीमारी में खर्च हो गए बाबूजी, बड़े बच्चे दोनों मर गए !"

लापरवाही के साथ वह एक सांस में ही सब कह गई ग्रौर पुनः घूंघट नीचा करके उसी एक रुपये को बच्चे के माथे से लगा, हज़ारों दुग्राएं देती, काम में लग गई।

मेरे शोकाकुल नेत्रों में उसकी जीवन-गाथा समा गई ग्रौर ग्रांसुग्रों का बांध फिर एकबारगी टूट पड़ा। भगवान् ! सहिष्णुता ग्रौर सब्र का गठ-बन्धन तुमने दरिद्रता के साथ ही जोड़ रखा है क्या ?

उऋण

"पहचाना आपने ?"

गाल भले ही धंस गए हों, आंखों के नीचे स्याह रेखाएं खिचती आ रही हों, बालों में सफेदी और अस्त-व्यस्तता-सी हो ; लेकिन एक ज़िन्दादिल, हंसते-खेलते व्यक्ति के साथ यदि कुछ क्षण भी गुजारे हों, तो स्मृति कदापि धोखा नहीं खाती । इसीसे उर्मिला ने गहरी दृष्टि आगन्तुक के चेहरे पर जमाकर कहा, "कुमार साहब !"

"हां, हां ; आहा ! मैं कुमार ही हूं । आखिर पहचान तो लिया आपने ।" और सोफे पर बैठते ही कुमार ने कमरे में इधर-उधर नज़र दौड़ाकर एकाएक पूछा, "यह चित्र आंकने का किसे शौक है ? ओह जनाब, यह भी एक कैसा बुरा मर्ज़ है !" कहते-कहते ऐसे ज़ोर का कहकहा लगाया कि उर्मिला को पाकिस्तानी हमले के वे अंधियारे दिन अकस्मात् याद आ गए, जब वह कश्मीर के गली-मुहल्लों, गांवों और अस्पतालों में ओषधि और कपड़े बांटते समय उस सर्द सांस-से वातावरण को अपनी हंसी की फुलझड़ियों से जीवित एवं मधुर बना देता था । फिर बोला, "क्या आपको ही शौक है ?"

"जी, थोड़ा-बहुत···"

"लेकिन जाने आपका तरीका क्या रहा है ! मैं तो साहब, दस-पन्द्रह मिनट में रंग लगाकर खत्म कर देता हूं । हा-हा···"

"आपका विषय क्या है ?"

"यही प्रकृति, पहाड़, फूल और कभी-कभी आकृति भी ।"

"और मैं तो अपने प्रयत्न अधूरे ही छोड़ देती हूं ! वास्तव में मुझे यह

शौक पिछली लम्बी बीमारी में लगा था, जब खाली बैठे-बैठे मन घबरा जाता था।"

"आप भी बीमार थीं ? लो साहब, और मैं भी ! हां, तो मैं वीरभद्र का पता पूछने आया था। वहीं हैं न वे ?"

उर्मिला जान-बूझकर चुप रही, यद्यपि वह कहना चाहती थी, कुमार साहब, आपके कारण मुझे कितने उलाहने सहने पड़े ! आप थे किस खन्दक में ? किन्तु उसने केवल पता बता दिया—'···मार्फत हिमालय एण्ड कम्पनी···।' कुमार ने चमड़े का बैग खोलकर पता लिखा और तनिक गम्भीर होकर कहने लगा, "दरअसल बात यह है कि जब आप चली आईं, तो मैंने भद्र से चार सौ रुपये लिए थे। वहां बर्फ पड़ चुकी थी, रास्ते सब बन्द थे और हमारे पास किराये तक के पैसे चुक गए थे। तब ये रुपये हमारे लिए चार हज़ार के बराबर थे।"

तो भी उर्मिला से इतने वर्षों की ढकी चादर को उघाड़ते न बना और उसने सिर्फ यही पूछा, "तो आपने अब कुछ लौटा दिए ?"

"जी, कहां ! जी, कहां ! रुपये···!" और वैसे ही लापरवाही से हंसते हुए उसने कहा, "अब पत्र लिखनेवाला हूं।"

किन्तु जैसे वह सारी बात खोल चुकी हो कि तुम्हें स्मरण नहीं, रेडक्रास के स्वयंसेवक के रूप में हम-तुम दोनों जब वहां गए थे, तो मैंने ही तुमसे वीरभद्र का परिचय करवाया था। अब यदि तुम ऐसा व्यवहार करो, तो मुझे ही लज्जित होना पड़ता है। तो भी प्रकट रूप में उसने किसी प्रकार कहा, "जी, यदि आज उसके कारोबार की दशा ऐसी न होती, तो चार-पांच सौ क्या चीज़ थे !"

"मैं तो स्वयं कहता हूं, अब कोई भला व्यक्ति उनसे आगे के लिए ले न सकेगा। और तो कुछ नहीं, इन्सान का विश्वास उठ जाता है।" और उसने सिगरेट जला ली। "मैंने आपसे कहा था न कि हम लोग अब उधर पुल के पास नहीं रहते।"

"तो ?"

"अमरसिंह पार्क चले गए हैं।"

"दूर बहुत है !"

"जी हां। एक बार इधर आओ, तो दम निकल जाता है। टैक्सी लो, तो मुसीबत। आज मजबूरी से आना पड़ा। इधर डॉ० वर्मा को एक्स-रे दिखाना था। वे कहते हैं, यहां से चले जाओ, शहर में बहुत भीड़-भड़क्का बढ़ रहा है और केस प्लुरसी का है।"

प्लुरसी का नाम सुनते ही उर्मिला चौंकी। आह, उसकी धारणा सत्य ही निकली। वीरभद्र से बार-बार यह सुनने पर कि समाजवादी हों या सुधारवादी, आजकल के नौजवान होते ही ऐसे हैं। उनमें तनिक भी चरित्र का अंश नहीं है। जी ही जी में उसे सन्देह था कि कुमार नितान्त ऐसा नहीं है। अवश्य ही वह किसी मुसीबत में फंसा होगा। इसीसे बार-बार लिखने पर भी वह उत्तर नहीं देता। उसने पुनः एक बार लम्बा चेस्टर, खुला पायजामा पहने छः फीट लम्बे युवक की ओर ध्यान से देखा। शरणार्थी-केन्द्रों में काम करते हुए वह गप्पें हांककर हंसाया करता था। उर्मिला को अभी तक यही लग रहा था, तो भी उसने प्रकट रूप में कहा, "कुमार साहब, चिन्ता न कीजिए, यह तो आजकल साधारण-सी बात है। एक बार स्वयं मुझे और मेरे चचा के लड़के वीरेन्द्र को हलका अटैक हो चुका है। प्रो० महेन्द्र को तो आप जानते ही हैं, जिनके ठीक होने का कोई आसार ही न था। कैसी गजब की सेहत बनाकर लाए हैं!"

"हः-हः! चिन्ता और मुझे? खूब कहा आपने! प्रो० महेन्द्र तो मेरे उस्ताद रहे हैं। लेकिन अमेरिका की बात कर रही हैं आप। नहीं, नहीं; पर हां, मेरे एक दोस्त इटली या स्विट्जरलैण्ड जाने की सलाह दे रहे हैं।"

"जी हां, स्विट्जरलैण्ड तो बहुत बढ़िया स्थान है और इटली के पास जो एक द्वीप है, क्या कहते हैं? वहां लोग समुद्र-तट पर खुली हवा में घण्टों सूर्य-स्नान किया करते हैं। खाने को दूध, पनीर, फल आदि बहुतायत से मिलते हैं। मैंने बहुत पढ़ रखा है उसके विषय में।"

फिर कुछ क्षण दोनों चुप रहे। उनके सामने से जैसे बेफिक्री और स्वस्थ

जीवन का एक उछलता समुद्र तेज़ी से लहरें मारता निकल गया। किन्तु एकदम संभलते हुए उर्मिला ने कहा, "और नहीं तो आप समुद्र-तट पर ही चले जाइए।"

"जी हां, बम्बई तो जा ही रहा हूं। वहां सारा दिन शहर से दूर आराम से समुद्र-तट पर लेटे-लेटे चित्र बनाता रहूंगा। है न बढ़िया बात? और आनन्द भी वहीं है। उसीने तो निमंत्रण दिया है।"

तब इधर-उधर की अनेक बातों के बाद दोनों का चित्त दर्पण-सा स्वच्छ हो गया। कुमार ने विदा ली। उसे दरवाज़े तक पहुंचाते-पहुंचाते उर्मिला ने रोककर अनुरोध-भरे स्वर में कहा, "देखिए, गर्मियों में पहलगांव ही चले आइए। मैं भी शायद जा रही हूं। वहां चीड़ एवं देवदारु की छाया, ताज़ी हवा, नदी का किनारा और खुली धूप आदि तो आसानी से मिल ही जाते हैं।" कुमार उछल पड़ा, "हां, हां, याद हैं अब तक वे दिन आपको?" मानो उसके आगे वे हिमाच्छादित शिखर, फूल, वृक्ष और जीवनदायक पहाड़ी वातावरण प्रत्यक्ष आ खड़े हुए हों। "लेकिन इस बार अपनी दोनों छोटी बहिनों को ले जाना न भूलूंगा। जब-जब भी मैं उन्हें उन सुन्दर दृश्यों और उस यात्रा की कथा सुनाता हूं, वे ललचा उठती हैं। अकेले जाने को अब मन भी नहीं करता। लेकिन..."

उर्मिला का ध्यान इस विवशता-भरे 'लेकिन' से सहसा मध्य वर्ग के ऐसे विशाल युवक-समाज की ओर जा पड़ा, जो एकदम आकाश और चांद को छूना चाहता है; पर हाथ-पैर पटकते-पटकते उलटे रेतीले समुद्र में धंसता चला जा रहा है। वह बोली, "इधर आप कर क्या रहे हैं?"

"आपको स्मरण होगा, मैंने उसके बाद एक स्कूल खोला था। अब भी बीस-पचीस लड़कियां हैं। शिल्पकला, नर्सिंग, इण्टर तक पढ़ाई आदि... देखिए..."

उर्मिला ने सन्तोष-भरे स्वर में कहा, "तो बहुत ठीक। कभी देखने आऊंगी।"

"नमस्कार! यह पांचवां अटैक है और अब के..."

"आप जल्दी ठीक हो जाएंगे, चिन्ता न करें। सूखी प्लुरसी जल्दी ठीक हो जाती है। फिर आजकल विज्ञान का युग है। इंजेक्शन, दवाई, सुपथ्य..."

"आप कहती हैं, तो क्यों नहीं होगा! पर मैंने डॉक्टर से कह दिया है: क्यों तसल्ली देते हो यार?" और फिर वैसे ही नमस्कार के साथ ऐसी जीवन-भरी हंसी का कहकहा लगाया कि वह अतिथि देवता जो छिपकर अभी तक इस युवक-शरीर में बैठा-बैठा आशा, जीवन और उमंग की लीला को देख रहा था, छाती से जोर से उठती हुई भयावनी खांसी के रूप में मानो कह उठा, 'मैं हूं! मैं हूं!'

और जब तक उर्मिला दरवाज़े से लौटकर सोचे कि जो हुआ सो हुआ, अब इतने वर्षों बाद इधर आने और वीरभद्र का पता पूछने का क्या कारण था? कुमार आधे घंटे बाद पुनः हाथों में बड़ा-सा लिफाफा लिए, जो मानो यमराज का साक्षात परवाना हो, आया और बोला, "जी, कहना भूल गया था, भद्र को मेरी ओर से आप ही लिख दें। मैं स्वयं लिखने बैठूं, तो या तो दो पंक्तियां या फिर कई पृष्ठ, जिनके लिए दम नहीं। वास्तव में डॉक्टर ने कह दिया है, दोनों फेफड़ों में खराबी है, सो मैं कल ही सीधे धर्मपुरा जाने की तैयारी में हूं।" फिर उसने जाते-जाते अनुनय-भरे स्वर में कहा, "लिख अवश्य दीजिएगा, अन्यथा मेरा चित्त अत्यन्त बोझिल रहेगा।"

दिन-रात

ठीक समय से आध घंटा पूर्व पहुंचने पर भी वे एकसाथ नहीं बैठ सके, यद्यपि आते ही कुमुद ने आमने-सामने दोनों ओर की सीटों पर वैसे उदार भाव से बिस्तर बिछा दिए थे, जैसे पिछले तीन-चार दिनों से निरन्तर वे मां प्रकृति के विस्तृत आंचल में जहां जी चाहता अबाध रीति से बैठ जाते, सो जाते और पुनः चलने लगते ।

अल्प समय ही में उस नीरव, उदार, शीतल वातावरण ने उनपर जादू-सा डाल दिया था । ऐसी मधुर लय में वे डूबे हुए थे कि उन्हें स्टेशन का कोलाहल, वहां की कर्कश ध्वनियां, यात्रियों का आना-जाना आदि तनिक भी अखर न रहा था ।

उत्तराखंड में ऐसा भीषण तुषारपात, कहते हैं, पूरे चालीस-पचास वर्ष बाद हुआ था । मसूरी जाने की ऐन नीचेवाली सड़क ही से दोनों ओर कई इंच मोटी बर्फ की तहें दिखाई देने लगी थीं, जो क्रमशः ऊपर लाल टीबे तक पहुंचते-पहुंचते बारह फुट तक हो गई थीं । छतों पर दोनों ओर पिघलती हिम की बूंदों से जमी हुई नोकीली शलाकाएं-सी लटक रही थीं । नन्दादेवी, अलकनन्दा, गंगोत्तरी, बदरिका, केदार आदि के उच्च शिखरों से लेकर टिहरी मार्ग तक साक्षात क्षीरसागर-सा व्याप्त था, जिसमें जहां-तहां हिम से आधे ढके देवदारु, चीड़, ओक आदि ऊंची लहरों के समान लहरा रहे थे। अद्भूत गम्भीरता और साथ ही भयानक सन्नाटा-सा छा गया था ।

घर-बाहर मीलों तक बर्फ में धंसे हुए, कहीं जीव-जन्तु तक का नाम-निशान नहीं—ऐसे नीरव, भव्य अवलोकन से वे प्रथम अभिभूत से रह गए,

पुनः बच्चों की भांति अकारण ही बर्फ के गोलों से खेलते रहे। उन्हें ऐसा जान पड़ रहा था, मानों अखिल वसुधा पर युग-युग के निवासी केवल वही दो प्राणी हों। कैसा अपूर्व था! अभी घंटा-भर पहले, पहाड़ियों के पीछे होता हुआ सूर्यास्त, कैसा सुखदायक था वह शीतल पवन का स्पर्श! एक स्वर्गीय रागिनी उन दोनों के चित्त में बज रही थी, जिसे वे भोर होने तक अक्षुण्ण रहने देना चाहते थे।

गाड़ी की खुली खिड़कियों में से वे भू के विस्तृत प्रांगण में उभरी पर्वत-शृंखलाओं को और जाह्नवी के वृक्ष पर झिलमिलाती चन्द्रकिरणों को देखते-देखते आनन्द से रात बिताएं—अब यही उनकी आकांक्षा थी। दैवयोग से एक खाली डिब्बा भी उन्हें मिल गया; किन्तु सहसा स्वप्न भंग हो गया, जबकि सामने की सीट पर एकाएक बिस्तर बिछाया जाने लगा और एक अधेड़ स्त्री ने आकर सीट संभाल ली।

प्रदीप ने तुरन्त बिस्तर लपेटा और साथवाले डिब्बे में, जहां अभी यात्रियों की भरमार नहीं हुई थी, स्थान बना लिया। कुमुद पानी का गिलास, कुछ खाना तथा सन्तरे आदि लाई और जाती बार ऐसे सरल भाव से देखती गई मानो उसका बना-बनाया मिट्टी का घर ही टूट गया हो!

कुमुद हंसती-खेलती जीवित प्रतिमा है। वह प्रदीप के चेहरे के भावों और उतार-चढ़ाव को देखकर रोती और हंसती है। साधारणतया प्रदीप को यह रुचिकर नहीं। वह नहीं चाहता कि कुमुद केवल प्रतिमा बनकर रहे। वह ऐसी संगिनी चाहता है जो नित्यप्रति के जीवन की दौड़धूप और बाह्य काम-काज में भी पग-पग पर साथ दे सके। जो बोझिल होकर न रहे, प्रत्युत स्वयं उसके कन्धों पर से बोझ उतार सके··· ; किन्तु जाने क्यों, इस समय उसका यह आना-जाना, शीतल झोंके के समान प्रदीप के अन्तर को उल्लसित कर गया और न जाने कितने ही अस्पष्ट चित्र उसे विभोर कर उठे।

एक अंधेरी वर्षा-भरी रात्रि। जब वह थका-हारा काम-काज की खोज में जा रहा था, तो वह सड़क तक पहुंचाने आई थी···उसके नेत्र भीगे थे!···

और ग्रीष्म की एक धूल-भरी सांझ जब चारों ओर से निराश वह

मैदान में बैठा था···तब कुमुद का वह प्राण संचारित करनेवाला आश्वासन······

दिन-रात काम में जुटी हुई, पूरे दस वर्ष से उसे कहीं बाहर की हवा नहीं लगी ; आज शायद प्रथम अवसर है, जब 'न्यू टाइम्स' के संवाददाता की हैसियत से वह कैमरा उठाकर घर से चला तो कुमुद भी नन्हे बच्चों की भांति मचलकर उसके साथ चल पड़ी।

इसी कारण जब अंधकारमयी निविड़ रजनी को चीरती हुई गाड़ी अगले स्टेशन पर आ खड़ी हुई और कुमुद तनिक उपालम्भ का भाव लिए दिखाई दी कि ऊपर की सीट पर जो स्त्री आई है वह मानसरोवर, पिंडारी-ग्लैशियर, नेपाल, भूटान तक पालकी में बैठकर यात्राएं कर चुकी है, बड़े कलक्टर की स्त्री है इत्यादि, तो प्रदीप और दिन की भांति तुनककर उत्तर न दे सका। प्रत्युत वह अपने समस्त अन्तर से उसके प्रति नत हो उठा। अनेक बार कहे गए अपने ही कठोर वचन स्वयं उसे चुभने लगे। ऊंघ-ऊंघ में उसका जी हुआ कि एक बार उन स्निग्ध केशों पर हाथ रखकर कहे, 'कुमुद, वास्तव में मैं तुम्हारे लिए जीवन-भर कुछ कर नहीं सका।'

रात्रि और भी घिरती गई। सूखे पलास-वन में से चीखती-चिंघाड़ती रेलगाड़ी जा रही है—कहीं वृहत् चट्टानें, कहीं दूर-दूर तक गंगा का विस्तृत रेतीला मैदान। पुनः वह सघन वेणु-कुंजों के मध्य खड़ी जाती है। कुमुद देर तक, एक हाथ सिर के नीचे रखे, कभी सो जाती और कभी खिड़कियों के दोनों पार, धरा-आकाश के घनघोर सन्नाटे में जुगनुओं की पंक्तियों को देख लेती है। छोटे-छोटे स्टेशनों से इक्के-दुक्के वनवासी जन उतरते-चढ़ते हैं, पर कोलाहल नहीं। सहसा दूर आकाश में चन्द्र खिल उठा। गहन शांति छा गई।

इधर अकस्मात् डांट-डपट की भनक-सी पड़ी, शायद बिना टिकट के यात्रियों का एक दल गंगा-स्नान को चल पड़ा है।

पुनः झपक-झपक में दिखाई दिया कि सामने की सीट पर गोलमटोल किन्तु साफ-सुथरे संवारे हुए दो बच्चे, जिनके पास ही लगभग पचीस वर्ष

की युवती मां, माथे को रूमाल से कसकर बांध कभी बैठती और कभी लेटती है। उसके सुकुमार देह-प्राण सभी मानो चूर-चूर हैं। उस दशा में वह कभी दीर्घ सांसें लेती और कभी कुछ धीरे से बोल जाती है।

वह जाने किस देश की रहनेवाली है। नख-शिख पहचाने नहीं जाते। केवल बिजली के प्रकाश में श्वास-श्वास से फूटती व्यथा उसके अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य को द्विगुणित कर रही है।

अनायास कुछ शब्द प्रस्फुटित हुए। उसने कहा था—मैं ऐसे ही चला जाऊंगा, तू देखती रह जाएगी—ऐसा भयंकर तूफान था उस दिन! झोंपड़ों के द्वार खटखट करते थे, दबादब बर्फ गिरने लगी थी—भेड़िये तक पगडंडियों पर आ पहुंचे थे—और वह प्रतीक्षा करती रही—करती ही रही—स्वयं अपने से अथवा ऊपर की सीटवाली स्त्री से, वह किसीको सुना रही थी। किन्तु कुमुद ने जैसे स्वप्न देखा हो।

'अंधेरी बर्फीली रात। सघन वन में स्थित फौजी बैरकें, जिनके द्वार लड़खड़ा रहे हैं। और एक दमे का रोगी, शायद चपरासी या क्लर्क, तूफान में भटकता, लड़खड़ाता, ठिठुरता झोंपड़े में आ गिरा है····! कुमुद एकाएक चौंककर उठ बैठी, उसे स्मरण हो आया। प्रदीप जब इसी भांति बीमार हो आ पड़ा था, तो क्षण-भर में उसे संसार कैसा शून्य और भयावना लगने लगा था!···किन्तु ऐसी आपत्तियां तो प्रायः उन्हींपर पड़ती हैं जो खर्च नहीं कर सकते, शहरों से दूर हैं अथवा जिन्हें डाक्टरी इलाज का अभाव है। और उसने यह स्मरण कर मन ही मन संतोष की सांस ली कि अभी तो उनके पास इतने वस्त्र हैं, रहने को स्थान है और शहर में हैं,'······'और वह अपने को धिक्कारने लगी कि क्यों वह हर समय प्रदीप को बाहर न ले चलने के लिए अथवा एक न एक मांग को पूरा करने के लिए कोसती रहती है। ईश्वर न करे! यदि कहीं कोई दुर्घटना हो जाए······?

कांप-सी उठी वह! आंखों के आगे अंधेरा-सा आ गया······! कितने वर्षों से चक्की की भांति काम-काज में पिसते हुए प्रदीप ने दोनों समय पेट-भर भोजन नहीं किया! कुसमय में आए हुए खड्डों, रेखाओं तथा उस पीले-

पन का, जो कल चढ़ाई चढ़ते समय प्रदीप के चेहरे पर झलक रहे थे, कुमुद के सम्मुख मर्म झलक आया।

कानों में भनक अभी तक पड़ रही थी, "वह गोआ की रहनेवाली है। उत्तर की ओर उसकी जाति-बिरादरी का कोई नहीं—अकेली सुनसान दुनिया में उसे अच्छा नहीं लगता। लोग तरह-तरह की बातें बनाते हैं। कष्ट बहुत है, पर वह लौटकर मां के घर कभी न जाएगी। एक दिन बिना मां से कहे जिसके साथ घर से चली आई थी, उसकी मान-मर्यादा रखेगी······चाय-पानी की दुकान खोल लेगी······पर स्मृति बनाए रखेगी!"

"आपत्ति तुमपर पड़ी है, लोगों का क्या! वे तुम्हें पग-पग पर रोकेंगे, तो क्या सहन करती जाओगी?" लेटे-लेटे अनायास ही कुमुद बीच में बोल उठी।

रात ढल रही थी। गहन निविड़ता में प्रकाश की नवीन किरणों के समान ही कुमुद के मन में एक दिव्य भाव उत्पन्न हुआ, 'बाहर बरामदे में भी स्थान दिया जा सकता है। कैसे प्यारे-शिष्ट बच्चे हैं! देखते जी नहीं भरता······अपने बच्चों से सहज ही में बन जाएगी······उनकी सरल-मृदु मुस्कान, उसे गुलाब के दो बड़े-बड़े फूलों के सदृश लगी। क्या ये अनाथालय में जाने योग्य हैं?'

अगले स्टेशन गढ़मुक्तेश्वर से पूर्व पुल के इस पार गाड़ी ठहरी। उषा फूट रही थी, दूर झाड़ियों पर पक्षियों के चहकने की आवाज़ आ रही थी। गंगा के नीले जल से तट पर लहरों के थिरकने की आवाज़ भी सुनाई पड़ती थी। कहीं किसान बैलों को ले जा रहे थे। कहीं यात्रा-दल गंगा-स्नान को उतर पड़ा था। जग में अपूर्व सौन्दर्य छा गया। इस महान क्षण में पृथ्वी के सभी प्राणी मानो अनायास ही एक आत्मतत्त्व का बोध कर रहे हों!

प्रदीप के आते ही कुमुद ने स्थिति समझाते हुए मानो आदेश दिया, "बच्चे कदापि अनाथालय न जाने पाएंगे। आगे ही बड़े लड़के की पढ़ाई बीच में छुड़ाकर तारघर में नौकर करवा दिया गया है और सबसे छोटी तीन साल की 'नन्ही' जाने किन पड़ोसियों के यहां है। देखो तो! दुनिया

कैसी बदल गई है ! कोई किसीका नहीं ! सहानुभूति तो अलग, फौजी सिपाही बच्चों पर दया और लालच से पैसे देने आते हैं, पर वह किसी-से लेना नहीं चाहती···अपने पर उसे दृढ़ विश्वास है। वह किसीकी परवाह न कर, संचित पचास रुपयों से चाय-पानी अथवा बिजली के सामान की दूकान मसूरी में खोल लेगी।"

अब उन दोनों की दृष्टि में हिमपूरित शिखर तथा प्रकृति के उन विराट रूप आदि का स्थान निम्न हो गया था। 'गाड़ी से उतरते ही मुख्य कार्य इस स्त्री के लिए प्रबन्ध करना है,' यह भाव उन्हें प्रातः समीर की भांति पुलकित कर रहा था और वे दोनों अपने को संसार के अन्य असंख्य प्राणियों से, जो दिन-रात स्वार्थों में लगे रहते हैं, कहीं ऊपर की श्रेणी में गिनने लग गए थे।

सूर्योदय होने तक तो कुमुद के हृदय में नया तूफान हिलोरें ही लेने लगा। आज उसकी चिरकालीन आकांक्षा पूरी होने जा रही है। वास्तव में एक ऐसी निर्भीक और बुद्धिमती साथिन के अभाव ही में तो कई योजनाएं पूरी न हो सकी थीं। उसे वर्षों पूर्व की अपनी एक अभिन्न बिछुड़ी सखी की स्मृति हो आई, जिसके साथ मिल-बैठकर उसने ऐसी अनेक कल्पनाएं की थीं, किन्तु जीवन की सरिता न जाने क्यों विपरीत दिशा में बहती गई। आज पुनः उसके प्राणों में नई स्फूर्ति जाग उठी। वे यहीं गंगा-तट पर मिलकर एक आश्रम खोल लेंगी। एक झपक ही में लगा, सरसों के खेत लहरा रहे हैं। खेतों और कुएं के मध्य शिशुओं की टोलियां स्वच्छन्द भाव से घूम रही हैं।

चारों ओर उल्लास ही उल्लास है। कहीं कोई अड़चन नहीं !

क्रमशः दिनमणि का प्रकाश बढ़ता गया। दूर क्षितिज से धीमी उठती मृदु किरणें प्रखर हो चलीं, गोलाकार वृहत् धरा के सभी रहस्यमय प्रदेश मुखरित हो काम-काज की प्रबल चुनौती देने लगे।

भूधरों के ऊंचे किरीट, स्वप्न के समान चूर-चूर हो धू-धू करते हुए

मानो वे रेतीले मैदान बन गए हों और वे वृहत् हिमशिलाएं और उज्ज्वल हिमसागर ही पिघल-पिघलकर मटमैली नदियां और ताल, पोखर दिखाई पड़ने लग गई हों। न कहीं वेणु-कुंज, न शालवन, न मरमर-सरसर ध्वनियां और न मृदु-शीतल छाया ही।

गाड़ी की रफ्तार धीमी, अत्यन्त धीमी हो चली और हापुड़ स्टेशन पर तो ऐसी खड़ी हुई कि चलने का नाम ही नहीं लेती; शायद दूसरी गाड़ी के आने की प्रतीक्षा थी।

मेरठवाली गाड़ी आने पर अनेक देहाती रज़ाइयां ओढ़े, लाठियां-हुक्के लिए तथा चांदी के छड़े और रंग-बिरंगे भारी-भरकम लहंगे-ओढ़नियां ओढ़े स्त्रियां-कन्याएं सब मधुमक्खियों की भांति डिब्बे में घुस पड़े।

नंगे-उघाड़े बच्चों ने तो आते ही खिड़कियों के सब शीशे घेर लिए। किसीकी आंख दुख रही थीं तो किसीकी नाक बह रही थी। कभी कोई स्त्री अकारण ही बच्चों के चांटा लगा ऐसा रुला देती कि कुमुद को विवश हो दोनों हाथ कानों पर रखने पड़ जाते। गर्मी क्रमशः बढ़ने लगी।

प्रदीप ने बीच के एक छोटे स्टेशन पर आकर दो घंटे देरी से पहुंचने की सूचना दी, तो वह चौंक पड़ी। घर-बाहर के कितने ही अधूरे काम, जिन्हें वे ऐसे ही छोड़कर चले आए थे, एकाएक सामने आने लगे। कोयला, कपड़ा, राशन आदि के लिए लम्बी पंक्तियां। मरम्मत के लिए फटे-पुराने लत्तों के ढेर, मकान के किराये का तकाज़ा किसी प्रकार एक-एक दिन गिनकर बीतनेवाली महीने की तीस-इकतीस तारीखें और तीसरे दर्जे के मुसाफिरों की सी एक-दूसरे पर बोरी, बिस्तरों, बक्सों की भांति उलटने-पलटनेवाली ज़िन्दगी...... !

क्षण-भर में कुमुद को वे दोनों बच्चे और गोआ-निवासी स्त्री तेज़ सिर-दर्द के समान लगने लगे, उस स्त्री का प्रदीप से अंग्रेज़ी भाषा में बातचीत करना (जिसमें शायद वह बाल्यकाल से अभ्यस्त थी) न सुहाया।

"ऐसी स्वतन्त्रता वह कदाचित् पसन्द नहीं करती और इन लोगों की चपटी नाक, पीले रंग, कैसे आकर्षणहीन हैं ये !"

प्रदीप मानो भृकुटि-मात्र से समझ गया हो। धीरे से आकर बोला, "तो कुछ रुपये ही दे दें, ठीक रहेंगे।"

"हां, हां। यही तो मैं भी कहनेवाली थी।" मानो उसके सिर-दर्द में किसीने उपयुक्त ओषधि लगा दी हो। बोली, "घर में अपरिचित व्यक्तियों को लाकर रखना किसी प्रकार भी बुद्धिमत्ता नहीं। अपना नंगा-उघाड़ापन अपने तक ही बना रहना उचित है। और पैसे दे देना यही क्या कम है! ...दुःख में व्यक्ति किसीके काम न आए तो क्या?"

प्लेटफार्म पर खड़े-खड़े प्रदीप ने नोटबुक निकाली, हिसाब जोड़ा। देखा, केवल पांच रुपये कुली, तांगे आदि के लिए हैं।

समस्या जटिल थी। फिलहाल तय यही हुआ कि जाते बार उन्हें चर्च के अनाथालय में पहुंचा दिया जाए। पास ही रास्ते में पड़ता है। प्रति रविवार को कुमुद उन्हें घर लिवा लाया करेगी और यह शुभ विचार उन्होंने गोआ-निवासी स्त्री पर प्रकट भी कर दिया।

धूप तेज़ होती गई। गाड़ी अब कहीं न रुक सरपट गति से सीधे जंक्शन स्टेशन पर ही जा रुकी। भीड़, कुली, उतरो-चढ़ो से गूंजते वातावरण में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-अपनी देखभाल ही स्वाभाविक होती है।

"क्या जाने इन दिनों लोगों ने सहायता लेने के विचित्र ढंग भी चुन लिए हों।" प्रदीप ने दूसरी ओर से कुली को सामान उठवा, कुमुद का हाथ पकड़ रेलवे लाइन पार की तो प्राण में प्राण आए!

गाड़ी के शीशों में से उस पार के मुख्य प्लेटफार्म पर स्पष्ट दिखाई पड़ता था कि वह स्त्री दोनों बच्चोंसहित, अदम्य स्फूर्ति से भीड़ के विशाल अपरिचित समुद्र को चीरती हुई अपना निश्चित पथ खोजती जा रही है। दिन के आलोक में न उन आंखों में कहीं रात्रि जैसी अधीरता है न व्यथा। और न उस सुकुमार चेहरे पर किसीके आश्वासन देकर तुरन्त मुंह फेर लेने से आश्चर्य अथवा दुःख का भाव ही।

क़ैदी

वह एक जीवित मांस की लोथ-सा दिखाई देता था। सफेद रक्तहीन चेहरे पर कीचयुक्त अधखुली आंखें, मुंह से बहती हुई लार, जो उसकी बढ़ी हुई दाढ़ी पर से एक डोरे की तरह टपक रही थी और जिसपर मक्खियों ने अधिकार जमा लिया था। उसके कांपते हुए सिर ने, जिसे वह हथकड़ियों की रगड़ से दोनों घावयुक्त कलाइयों के सहारे थामे हुए औंधा पड़ा था, उसकी आकृति को और भी भयावना बना दिया था।

बेड़ियों की ज़ंजीरों को पकड़े हुए यदि उसके दोनों ओर दो लाल पगड़ी-वाले सिपाही न होते, तो कोई भी यात्री ऐसे घिनौने मरणासन्न व्यक्ति को बस में न घुसने देता।

उसी दिन प्रातःकाल उन लोगों ने लाहौर से मोटर बस द्वारा श्रीनगर के लिए प्रस्थान किया था। करीब दो बजे जम्मू शहर के अन्त में, जहां से जम्मू-कश्मीर वैली रोड प्रारम्भ होती है, मोटर बस पेट्रोल लेने के लिए खड़ी हुई। पेट्रोल-पम्प पर खड़ा होना, विशेषतया गर्मी के दिनों में, यात्रियों के लिए बहुत नागवार-सा होता है।

अगली सीटों पर दो-तीन कालेज के विद्यार्थी थे, बीच की पूरी सीटों पर दो स्त्रियां तथा उनके दो बच्चे और पिछली सीटों पर जम्मू शहर से सवार हुए तीन-चार यात्री, जो सब्ज़ी आदि कश्मीर ले जाने का व्यवसाय करते थे, और एक खानसामा भी था।

विद्यार्थी अखबार और पुस्तकें उलट-पलटकर देखने लगे। दोनों स्त्रियों में से एक ऊंघ रही थी और दूसरी नीचे सुदूर समतल पर एकटक देख रही

थी, मानो अपने बीते हुए जीवन के वर्ष गिन रही हो।

"क्या वह बीमार है ?"

"जी हां, यह बीमारी इसे जेल में ही हो गई थी।"

इसी समय पिछली सीटों पर कुछ भनभनाहट हुई, और अगली सीटों के सभी यात्रियों की दृष्टि उस विकृत मनुष्य की ओर आकर्षित हुई। सड़क पर कुत्ते की मरते समय जो दशा होती है,...अभी दस मिनट में ही सबका जी लगभग उसी तरह के भय, आशंका और ग्लानि से एकबारगी भर गया।

रामनगर-महल को पार करते ही पथरीले पहाड़ आरम्भ हो जाते हैं। नीचे दूर तक रेत और सफेद पत्थरों के विस्तृत मैदान में से मार्ग बनाती हुई तवी नदी बह रही है। उस पार कुछ हरी-हरी खेतियां, बहेकड़ की झाड़ियां और कुछ दूरी पर समीप आती हुई विशाल पर्वतश्रेणियां—यह सब कितने सुहावने प्रतीत होते हैं ! किन्तु आज ड्राइवर की कृपा से सब...

यात्रियों का अनुमान था कि उसकी ज़बान बन्द हो चुकी है, वह मूर्छित है और अन्तिम घड़ियां गिन रहा है; किन्तु वे मानो भूत-प्रेत के मुख से सुन रहे हों, "पानी ! पानी !..."

"तो अभी वह जीता है ?"

"शायद न मरे।"

सब लोगों ने एकसाथ ही सिपाहियों की ओर देखा।

"देते हैं पानी, सबुर करो।"

"रास्ता सूखा है, पानी यहां कहां मिलेगा ?"

ड्राइवर अपनी तेज़ चाल से मोटर लिए जा रहा था। सात-आठ मील के बाद एक दूकान से पानी मिला, किन्तु उस जीवित लोथ ने स्पर्श करते ही मुंह फेर लिया, "न...न...ठंडा पानी...बर्फ...पानी हुं-हुं..."

"वाह रे लाट साहब ! ठंडा पानी—बर्फ...पानी...नवाब तो तू ही है।"

सब लोगों ने पुनः सिपाहियों पर एक नज़र डाली।

"पानी···त्रेश···त्रेश···"[1]

"अजी, यह तो जेल में झुलस गया है। कश्मीरी है न?"

"पहाड़ी लोगों को वैसे ही नीचे भेज देना बड़ा भारी दण्ड है, और फिर जेल में···या अल्लाह!" खानसामे ने कहा।

"लो बादशाहो!"

ऊदमपुर पहुंचकर दूसरे सिपाही ने ठंडे पानी से भरा लोटा कैदी के मुंह से लगाया। हांफते हुए घोड़े की तरह वह एक सांस में ही लोटे का पानी समाप्त कर गया।

अगला पड़ाव कुद सैनिटोरियम है। चीड़ वृक्षों में से सरसराती हवा, संध्याकालीन नीले आकाश में जहां-तहां छितराए बादल, एक-एक मोड़ के बाद ऊंचाई। तीन घंटे में कितना परिवर्तन!

"रोटी!—क्या तेरी मां ने पका रखी है?" पीछे फिर भनभनाहट हुई।

लोथ! नहीं, अब हम उसे कैदी कहेंगे। कैदी के चेहरे का रंग अब पीला हो गया था, और क्रमशः उसमें जीवन के चिह्न जागरित हो रहे थे। हां, तो कैदी ने पुनः धीरे से यन्त्रणा-भरे स्वर में कहा, "भूख! रोटी!"

यात्री उसके इस आश्चर्यजनक परिवर्तन और कुसमय की मांग को सुनकर हंस पड़े। स्त्रियों में से एक के पास कुछ खाने की सामग्री थी। चलती गाड़ी में उसने अपनी टोकरी में से कुछ ताजा कलाकन्द, मूंग की तली दाल और दो आम सिपाही के हाथ में दिए।

"लो, जलसे करो दोस्त! सतवरे ते कुश नहीं मिलया।" (लो, जलसे करो दोस्त! सात वर्ष से तुम्हें कोई चीज नहीं मिली।)—सिपाही ने डोगरी भाषा में कहा।

"कितने वर्ष की कैद थी?" पिछली सीट के एक वृद्ध महाशय ने पूछा।

---

१. कश्मीरी भाषा में 'त्रेश' प्यास को कहते हैं।

"सात वर्ष की।"

"ओह ! सात वर्ष तो एक लम्बा अरसा होता है।" एक ठंडी सांस के साथ उसने कहा।

"खाने को क्या मिलता होगा ?"

"दो सूखी रोटियां और दाल दोनों वक्त, और क्या ! जनाब, जेल है, जेल !"

"अब इसे कहां ले जा रहे हैं ?"

"इसकी सज़ा खत्म हो गई है, बीस ही दिन बाकी हैं। हरिपर्वत जेल में इसे छोड़कर हममें से एक आदमी वापस आ जाएगा।"

कैदी मिठाई समाप्त कर चुका था और आमों का रस उसकी काली घनी दाढ़ी से टपकता हुआ हथकड़ियों तक जा पहुंचा था। अपने समूचे जीवन में ऐसी मिठाइयों और आमों के रस का उसने कभी आस्वादन नहीं किया था।

मोटर बस इस समय एक ऊंची चोटी पर से गुज़र रही थी। अंधेरा हो चला था। पर्वतीय शीतल वायु, रसपूर्ण पदार्थों की तृप्ति एवं 'घर जा रहा है,' सिपाही के इन शब्दों ने उसके विक्षिप्त अंगों में अद्भुत् चेतना का संचार कर दिया।

कैदी मुस्कराया, "अज भत्ता खाएगा।" (आज चावल खाऊंगा।)

"हां, आज रात को पुलाव खिलाएंगे मामाजी !" सिपाही ने व्यंग्य से उत्तर दिया।

वृक्षों में से अर्धचन्द्र कभी निकलता और कभी छिप जाता। जिस समय मोटर बस पड़ाव पर खड़ी हुई, यात्री एक चौबारे में चले गए और कैदी सिपाहियों के पीछे-पीछे ढुलकता हुआ ऊपर की पहाड़ी पर स्थित पुलिस-चौकी पर ले जाया गया।

क्षितिज में अभी काफी तारे बुझते-जगते नज़र आते थे। चन्द्रमा की छाया इस पार अभी फीकी भी नहीं पड़ी थी कि ड्राइवर ने पों-पों करके हार्न बजाना आरम्भ किया। यात्रियों ने बिस्तरे बांधकर पहाड़ी कुलियों द्वारा सामान नीचे भिजवा दिया। केवल 'कैदी' के आने की देर थी।

"नामुराद ! कमबख्त !" दो-चार अन्य भद्दी-सी गालियां देकर ड्राइवर ने पुकारा।

आज उसका सिर नहीं कांप रहा था। पीला कुरता, जांघिया और टोपी पहने डोर-बेड़ियों की झनझन ध्वनि करता हुआ वह सिपाहियों की साथ-वाली सीट पर अधिकारपूर्वक बैठ गया।

धुन्ध, घनी छाया, सामने के पर्वतों में गहरी निस्तब्धता लगातार कई मीलों तक छाई थी। सभी यात्री गर्म वस्त्रों में लिपटे हुए बैठे थे।

आखिरकार इस एकरसता को भंग करते हुए वृद्ध सज्जन ने कहा, "क्यों जी, फिर रात को खूब भात खाया ?"

"सब हड्डियां, सब जूठा भात !" रोषपूर्ण स्वर में कैदी ने उत्तर देते हुए स्त्री की ओर देखा, "माईजी, सलाम।"

"खुदा तैनूं ज़िन्दा रखे।"

"बकता है।" सिपाही ने मानो सफाई पेश करते हुए कहा, "सारी रात तो सोने नहीं दिया—कभी रोता था, कभी हंसता था। खबर नहीं, इसे क्या हो गया था !"

कैसे वह एक पालतू कुत्ते की भांति हवालात के एक कोने में सींकचों से बांध दिया गया था, चन्द्रमा की चांदनी में घंटों वह किस तरह चावल और मांस पकाने की सुगन्धि का मज़ा लेता हुआ अपने मिट्टी के प्याले की ओर देखता रहा, और जब तक पड़ाव की पुलिस का हवलदार जम्मू-जेल से आए हुए अपने अतिथियों (सिपाहियों) की खातिरदारी करता और उनके साथ बैठकर मांस-चावल आदि खाता रहा, तब तक वह अधीर हो उचक-उचककर देखता रहा। रात की सारी घटनाएं कैदी के आगे घूम गईं। वह पुनः चिल्ला उठा, "हड्डियां माईजी ! सब जूठा भत्ता ! माईजी, अज चाय पिलाएंगा। जे अज चाय नहीं पिएंगा, ते फेर कद पिएंगा ? ज़िन्दगानी, परवरदिगार तैनं······" (माईजी, आज चाय पिला दो। आज के दिन अगर चाय नहीं मिलेगी, तो फिर कब मिलेगी ? परवरदिगार तेरी आयु···)

और सामने की चोटियों पर प्रभात-वेला में नवीन तिरछी किरणें

अलौकिक प्रकाश फैलाने लगीं। चन्द्रभागा दूर से उस विशाल पर्वतमाला के चरणों-तले पतली धारा-सी दिखाई पड़ी। यात्री इस अपूर्व सौंदर्य पर मुग्ध हो उठे।

"यही क़िला है कश्मीर का काला पानी। पहले महाराज के समय में जिसे आजन्म कारावास होता था, उसे यहीं छोड़ देते थे।"

दोनों ओर महान पर्वतों के बीचोबीच अकेला एक छोटा-सा पर्वतखण्ड —कुछ भग्नावशेष और घिरा हुआ। लोगों ने एकसाथ ही उस भयावने स्थान एवं कैदी की ओर देखा। फिर कुछ ढलान आई, और चन्द्रभागा उछलती-कूदती, पूरे यौवन में प्रवाहित होती समीप आ गई।

"अहा ! आब—आब ! आब !" (पानी है—पानी ! पानी !) कैदी खुशी के मारे ज़ोर से चिल्लाया—इतना कि सिपाहियों को उसे डांटना पड़ा। कैदी इधर-उधर की भूली पंक्तियां गाने लगा :

" अजाबल म्यान दीदार जाने
छलछल म्यान दीदार जाने
वला म्यानी पोशे-पोशे
चे कुत छुइ शान व्यथिरालो
बागे निशात के गुलो।"

—ओ मेरे छलछलाते देश, चीड़ वृक्षों के घेरे में चिनार के पेड़ के नीचे अज़ाबल (एक छोटी झील का नाम) !

—बर्फ पिघल गई है, नवीन कोंपलें फूट निकली हैं। नरगिस, गुलाब, यास्मान ओ निशात बाग के फूलो !

—और शगूफा निकल आया है। बेदमुश्क की महक हमारे शिकारे तक आ पहुंची है—ओ मालती, समावार में चाय की पत्तियां डाल !

—ओ मालती, मैं डांड़ लेकर डोंगे को बाहर ले चलता हूं और तू चप्पू चलाना !

चन्द्राभागा सड़क से कुछ ही नीचे अठारह-बीस मील तक साथ ही साथ बही है। अनेक छोटे-छोटे नाले, हिमखण्डों से पिघलते हुए प्रपात-झरने,

जड़ी-बूटियों में से होते हुए उसके साथ मिल रहे हैं ।

और कैदी अपनी मस्त तान से कश्मीरी भाषा में गाता चला जाता है; किन्तु गाने के प्रत्येक अन्तिम चरण में एक करुण भयावनी चीख उसके मुंह से निकल जाती है । सिपाही ने फिर डांटकर कहा, "कुत्ते की तरह रोता क्यों है कमबख्त ?"

अब श्रीनगर केवल पचास मील शेष रह गया है । हरी-हरी धान की खेतियां, सफेदों से घिरी सड़कें, फलों से झूलते पेड़ और नववसन्त के सौरभ से आलोड़ित समूची उपत्यका मानो उसका आतिथ्य कर रही हो । सड़कों पर काम करनेवाले कुली, खेतों पर काम करनेवाले किसान, लम्बे कुर्ते और टोपियां पहने कश्मीरी बच्चे मोटर बस की तेज़ चाल में से भी कैदी की आत्मा के साथ एकाकार हो रहे थे । वह बरबस मोटर की खिड़की में से मुंह बाहर निकालकर चिल्लाया, "च छुखा काशुर !" (अरे, तुम कश्मीरी हो न !)

किसी भी व्यक्ति से कश्मीरी भाषा में बात करने के लिए उसका हृदय मानो छटपटा रहा था । वह कभी सीट पर से उठता, कभी सिर बाहर निकालकर देखता और कभी बीच की सीटवाली स्त्री और उसके बच्चे की ओर देखकर कहता, "जिन्दगानी, परवरदिगार, माईजी ! ओ म्यानी दोस्ता ! (लड़के की ओर देखकर)—मेरे दोस्त !"

स्त्री बार-बार कैदी के इस व्यवहार पर झेंप जाती और उसका लड़का कैदी को 'अपना दोस्त' कहते सुन झुंझलाने लगता ।

"अजी, सात वर्ष इसने चाय नहीं पी । सात वर्ष इसने भात नहीं खाया । सात वर्ष तमाकू नहीं पिया और सात वर्ष किसी स्त्री और बच्चे का मुख नहीं देखा ।"

"क्यों हजूर ?" खानसामे ने सिपाहियों की ओर देखकर मुस्कराकर कहा ।

"अरे, चुप कर । माईजी, माईजी मत कर । रात को भी पूछता था, वह मिठाई देनेवाली माईजी क्या कल भी होंगी ?" फिर कुछ मील निकल गए ।

"ब छुस बड़ा गोनाहगार, म्यानी खुदाया ! श्रो परवरदिगार म्यदि राहत !" (या खुदा, मैं बड़ा गुनाहगार हूं, मुझे सीधे रास्ते पर ले चल ।)

सीटों के मध्य में नीचे दोनों हाथों पर सिर रखकर मानो उसके अन्तर से कोई मर्मान्तिक व्यथा फूट रही हो। कैदी सिसक रहा था। जान पड़ता था, जैसे ऐसी क्रिया उसका अंग बन चुकी है। वह पुनः उठा और ज़ोर से हस पड़ा, "दान्यि, दान्यि !"[१]

शहर समीप आ गया था। बादामी बाग के मैदान में भीड़ एकत्र हो रही थी। "महाराज ! महाराज !" वह उछल पड़ा, "मैं सौगन्धपूर्वक कह सकता हूं, महाराज खेलने आए हैं।"

खानसामे ने पूछा, "तुम्हारी माई है ?"

कैदी का सिर पुनः लटक-सा गया।

" नहीं।" उसने सिर हिलाकर कहा, "बच्चे हैं ?"

उसका गला भर आया। एक नज़र उस बीच की सीटवाले लड़के की ओर डालते हुए कैदी ने हाथों के संकेत से कहा, "दोनों नहीं। एक लड़का था, एक लड़की, और···" वाक्य को समाप्त करने से पूर्व उसने एक दृष्टि इस भांति उस शस्य-श्यामला भूमि, उस कलकल-छलछल करती हुई नदी—जेहलम—उस विस्तृत नीले आकाश में फैले उड़ते सफेद बादलों की ओर घुमाई जिनकी आशा से वह कल जी उठा था। जैसे आज फिर सब कुछ सूना हो गया हो। उसने रुंधे गले से ज़ोर लगाकर कहा, "और शादी भी मर गया।"

सब लोग हंसते-हंसते लोट-पोट हो गए। बस से उतरते हुए खानसामे ने कहा :

"वाह ओये खुश रहो जवानां,
पैंडा सोणा कट छोड़ आई।"

—वाह जवान ! खुश रहो, रास्ता अच्छा कट गया है !

---

१. 'दान्यि' कश्मीरी भाषा में 'धान' को कहते हैं।

ऐसी हंसी इसके पूर्व कभी उनके मुख पर नहीं देखी गई। आते ही वे एक लम्बे कदम से चटाई को लांघ, सुनन्दा जहां कागज़-पत्र बिखेरे कुछ लिख रही थी, धड़ाम से तख्त पर जा बैठे।

'क्या है जी, क्या लिख रही हैं? विषय तो बड़ा सुन्दर है! हां, और साथ ही साथ यह बुना क्या जा रहा है···?' इत्यादि अनेक प्रश्न उन्होंने ऐसे कर डाले कि सब अचम्भित रह गए।

बीच-बीच में जब भी वे सुवीरा को पढ़ाने आते हैं, वातावरण ऐसा गम्भीर हो उठता है; साधारण बातचीत तुरन्त बन्द और फैली हुई वस्तुएं, कागज़-पत्र हटा दिए जाते हैं। उनके स्थान पर मोटी-मोटी पुस्तकें, फाइलें, नोटबुकें आदि एकत्र हो जाती हैं। टेबल-लैम्प के हलके प्रकाश-तले घंटों ही काव्य एवं साहित्य की व्याख्या करते समय वे असीम ज्ञान के भंडार-से लगने लगते हैं। तब उन्हें समय की परवाह नहीं होती। भले ही रात के दस बज जाएं। यहां तक कि कालेज से थकी-मांदी, भूख-प्यास से आकुल सुवीरा इस ज्ञान-धारा को पचाने में भी असमर्थ क्यों न हो उठे।

"ओह! छोड़ दिया! चला आया···यह लीजिए। कहकर तुरन्त आ गया हः हः···अब सिर झुकाकर वहां खड़ा होना तो न पड़ेगा। जाने दो··· जहां चार सौ हैं, वहां···पांच सौ सही···! ओ हो! मैं तीन-तीन घंटे शेक्सपियर और कीट्स समझाता जाऊं···बाज़ आया।"

उपर्युक्त वाक्य उनके अन्तर से फव्वारे की तरह आह्लाद लिए फूटते जा रहे थे।

जीवन में अनेक संबंध ऐसे होते हैं जिनमें नित्यप्रति परिचित रहते हुए भी घनिष्ठता बढ़ाना असंगत होता है। तो भी बातों-बातों में देहाती डील-डौल और विलायती वेश-भूषा के इस प्रोफेसर का बहुत कुछ हाल सुनन्दा जान गई है। उन्हें देखते ही सहसा आंखों के आगे सरसों के खेत, दूध के थनों से झुकी भैंसें, पोखर, ऊबड़-खाबड़ विस्तृत धरती और साथ ही लोक-जीवन की अनेक करुण, क्रूर, मृदु कथाएं मुखरित हो उठती हैं।

युद्ध से लौटकर एक हवलदार ने कैसे संदेह में अपनी युवा पत्नी का अन्त कर दिया और खेत की रखवाली करते हुए कैसे एक स्त्री, गंडासे से घर-वाले पर वार कर प्रेमी के साथ भाग गई...

श्रावण-वसंत में नर-नारियों की टोलियां कैसे आल्हा और होली गाते हुए खेतों में नाचती-घूमती हैं! और पनघट पर नववधुएं दूर ही से युवक चौधरी को आते देख कैसे लजाकर घूंघट काढ़ लेती हैं...!

सुवीरा जब कभी कालेज से नहीं लौटी होती, तो कभी-कभी समय से पूर्व प्रोफेसर महेन्द्र के आ जाने पर सुनन्दा को उनके लिए चाय की प्याली बनाते समय यह सब सुनने में बड़ा रस आता है।

किन्तु इस वार्तालाप में शहरी पौधों की भांति वृत्त से बाहर झांकने में सुनन्दा को जिस स्वच्छन्द-मुक्त वायु का स्पन्दन तथा जो कौतूहल मिलता है, प्रोफेसर महेन्द्र के विषय में ऐसा नहीं। उनका मस्तिष्क भले ही दिन-रात, लन्दन, पेरिस के विश्वविद्यालयों, शेक्सपियर के स्टेर्ड-फार्ड और हार्डी के रासेक्स के स्वप्न ले, किन्तु उनकी जड़ें वटवृक्ष की भांति कच्ची धरती ही में फैली हैं।

बिस्कुट, टोस्ट, सिगरेट आदि के शौकीन होते हुए भी शुद्ध मक्खन व दूध-छाछ के कटोरे के बिना मानो उनकी ज़िंदगी ही नहीं। ग्रामीण जीवन के उजड्डपन की सैकड़ों त्रुटियां स्वयं वे चाहे निकालते रहें, किंतु शहरी लड़कियों की वेश-भूषा, उनकी चाल-ढाल में उन्हें सदा कृत्रिमता की गंध आती है। देहात का दुःख-सुख, मान-अपमान निज देह के समान उनका

ऐसा अपना है कि अनेक बार वहां के पिछड़ेपन और अज्ञान आदि की बातें करते समय वे एकाएक गम्भीर विचारों में डूब उठते हैं···। यहीं तक नहीं, आवेग में आकर एक बार तो वे स्थानीय कालेज की पक्की नौकरी छोड़ देहाती इण्टर कालेज की उन्नति के लिए भी कुछ मास के लिए चले गए थे। अतिरिक्त इसके आए दिन, असमर्थ ग्रामीण युवकों, संबंधियों के आने-जाने, आतिथ्य एवं लेने-देने की चर्चा से अद्भुत उदार भावना के झोंके प्राय: उनमें उठते रहते हैं। गुरु-शिष्य-परम्परा में उनका अटल विश्वास है। कृतियां बेचना, फीस लेकर शिक्षा देना उनकी रुचि के सर्वथा प्रतिकूल है।

केवल इन्हीं पिछले दो-एक वर्षों से ही जाने क्या ऐसा उलट-फेर हुआ है जो ऐसे उच्च मानसिक धरातल के व्यक्ति के मुंह से हर घड़ी रुपया-पैसा की बात सुनते न केवल ऊब-सी उठी है, बल्कि उस दिन युवक-समाज के फंड से राशि गायब होने पर तो सुनन्दा को संदेह तक होने लगा था।

इधर दो-तीन मास से उनका आना-जाना प्राय: रुक-सा गया था और उसका कारण सुवीरा से जानकर वह निश्चिन्त-सी हो गई थी।

लेकिन आज अकस्मात् इस विचित्र हंसी और बातचीत के ढंग से वह विचलित-सी हो उठी। पूरे डेढ़-दो सौ की ट्यूशन इन दिनों छोड़ देना··· कभी-कभी क्षणिक स्वाभिमान में आकर व्यक्ति क्या-क्या कर बैठता है··· जाने कब तक बाद में···वह कहनेवाली ही थी, 'आपने भारी भूल की' कि अनायास उसके सामने अपने कई निजी अनुभव आ गए, और उसे अपनी ही मूर्खताओं पर हंसी हो आई—यदि वह उक्त संस्था से उस समय त्याग-पत्र न दे आती···

केवल सुनन्दा ही नहीं, साथवाले कमरे में बाहर जाने को तैयार खड़े अशोक भी कहनेवाले थे, भाई साहब! छोड़ मैं भी आया था इसी प्रकार पूरे अढ़ाई सौ का काम। यह कहकर कि—सांस लेना चाहता हूं, अशोक हूं, पत्थर नहीं, जो किसीकी मरज़ी से उठा-बिठा दिया जाऊं—और जीवन के सर्वोत्तम भाग को दम घुटनेवाले वातावरण में फाइलें गिनते-गिनते

ि ाता दूं''''उसके आगे झलक रह। थी एक शीतकालीन दोपहरी, जब वह ठिठुरा-जकड़ा हुआ सा दफ्तर के बाहर हरी घास पर धूप में जा खड़ा हुआ था, और उसे, वहां टहलने की मनाई कर दी गई थी'''किंतु आज तीन वर्ष हो चले कोई अनुकूल काम उसे नहीं मिला, वह कविताएं लिखे, चित्र बनाए, कौन इसका पारखी है ?

बाहर आंगन में युक्लिप्टस और नीम के पेड़ों तले लम्बे कदमों से टहलते-टहलते महेन्द्र स्वयं भी गम्भीर हो उठे, उनकी हंसी कुछ देर के लिए गई, मानो वह सुनन्दा और अशोक का मनोभाव समझ गए हों। इन दो-चार मिनटों की चुप्पी में ही उनके जीवन का वास्तविक रूप छाया की भांति धीरे से उनके आगे से होकर निकल गया।

कन्धों पर कितना भारी बोझ है ! बारह वर्ष की उभरती हुई कन्या, विकृत बदसूरत, भयानक रोग से पीड़ित दो-तीन शिशु व उनकी बीमारियों का खर्च। और वह अल्हड़ पत्नी, जिसके साथ भूलकर भी वह अपने सच्चे गहरे भावों एवं ऊंचे दिवा-स्वप्नों की उड़ान की बात नहीं कर सकते। उनका अणु-अणु इसकी स्मृति-मात्र से कांप उठा कि वह कुल अट्ठाईस वर्ष की अवस्था ही में दो बार विवाहित और तीन बच्चों के कर्तव्यपरायण पिता हैं। तब उन्हें अकस्मात् एक महापुरुष की जीवनी में से ये वाक्य याद हो गए—'जब मैं कच्ची उमर के युवकों को पिता बन जाते देखता हूं, मुझे उनसे गहरी सहानुभूति होती है।'

तत्क्षण उनका ध्यान असमय में श्वेत हुए अपने सिर के बालों, चश्मे के अन्दर धंसी-सी आंखों और फटी-उधड़ी कमीज़ एवं गर्मी के दिनों में फलालैन की पैंट पर गया। साथ ही उधार के चार-पांच सौ रुपये ! उन्हें अपने जीवन से अत्यन्त ग्लानि होने लगी—उन्हें लगा मानो वे एक ऐसी घनी दलदल में फंसे हों जहां से दूर-दिगांचल पर विविध ज्ञान, विविध जीवन-दिशाओं का मनोहारी और सुहावना किनारा तो दिखाई पड़ता हो लेकिन''''

विवशता से ली गई इस ट्यूशन से उन्हें यही तो क्षणिक आशा

संचारित हुई थी—सम्भवतः इस नई छात्रा के सम्पत्तिशाली पिता उन्हें कुछ समझ सकें और उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिए विदेश जाने आदि का प्रबन्ध करवा दें।

वास्तव में छोड़कर भूल की ?…किन्तु एकाएक मानो वे नींद से चौंक पड़े हों। उनके सामने घूम गया वह सुसज्जित भवन, अशोक, चम्पक आदि वृक्षों और फूलों की रविशों से भरा आंगन, जहां वे सिर झुकाए धीमे-धीमे कदम रखते आते हैं, और तब तक एक ओर कुर्सी पर प्रतीक्षा करते बैठे रहते हैं, जब तक वहां कृत्रिम हंसी, असंस्कृत बातचीत, चाय के बढ़िया बर्तनों व सामग्री से मेज़ न खाली हो जाए—और भड़कीले वस्त्रों, लटकती चाल से, आए वह लड़की, जिसे उन्हें केवल मूल्य बढ़ाने अथवा समय व्यतीत करने के लिए पढ़ाना है। वे अपने जीवन का तत्त्व निचोड़कर उसे समझने की चेष्टा करें और वह एक प्रश्न का उत्तर भी न दे सके…।

उनकी आंखों में एक अद्‌भुत भाव उतर आया। भवें तन-सी गईं, सिगरेट मुंह में डाल लिया और बड़ी उन्मादित-सी हंसी हंसकर पुनः बोले :

"क्षमा कीजिएगा, मैं आपके सामने कभी सिगरेट नहीं पीता…पर हां, आज मैं सबको बाहर एल्पस में चाय पिलाऊंगा….और सिनेमा ले चलूंगा। जहां चार सौ हैं वहां पांच सौ सही…। और देखिए…आप अवश्य कहेंगी, कलाकार, अध्यापक, साहित्यकार, संस्कृति और जीवन के निर्माता हैं…. इत्यादि !"

"किन्तु आप नहीं जानतीं, हम सबपर एक ही भूत-प्रेत की सी छाया है।"

छाया—जो हमें पनपने नहीं देती। हः हः हः हः। सुनन्दा जब तक उत्तर दे, वे एक सांस में कहते गए, "हां, आप यह भी कहेंगी—क्यों नहीं बिल भेजकर पूरा वेतन चुका लिया ? अन्याय सहन करना पाप है।"

"निस्सदेह ! निस्सदेह ! किन्तु यदि व्यक्ति एक बार अपमान सहन करने का आदी हो जाता है, तो सहता ही चला जाता है। आह ! वह कृपादृष्टि

···आभारी हूं उन लोगों का, जिनके कारण मुझे पुनः चेतना मिली···!"

"ओह ! अब मुझे पढ़ाते समय बार-बार परदे में से सन्देह-भरी नज़र से झांकने तो कोई न आएगा···चलो सुवीरा, चलो अशोक।"

सुनन्दा जब तक मानव-अन्तर में—भूधर से—छिपे इन भावों व अद्‌भुत रहस्यमय शब्दों को समझने की चेष्टा कर रही थी कि वह ताली-सीटी बजाते-बजाते सुवीरा अशोक को खींचकर साथ लिए चले गए। किन्तु पुनः तुरन्त ही सीढ़ियों से लौट आए, जैसे स्वयं ही उनके छिन्न-भिन्न हृदय ने उन्हें आश्वासन दिया हो, निविड़ अन्धकार में जैसे आलोक प्रदीप्त हुआ है।

स्थिर स्वर में धीरे से आकर बोले, "हो सका तो इन छुट्टियों में अवश्य निबन्ध पूरा करके लाऊंगा, दो पुस्तकें प्रकाशित होने-भर की देर है जी !"

अगले दो-चार क्षणों ही में, अब वे मुक्ताकाश में स्वच्छन्द गति से, पंख फैलाए, मुग्ध पक्षी की नाईं उड़ते हुए कदमों से सड़क पर जा रहे थे।

इनकी जात

कल शाम की ही बात है। काफी हंस-खेलकर हम लोग मैदान में से उठे तो शकुन्तला ने मुड़कर कहा, "देखो, फिर बिहारी......"

शकुन्तला के पति तनिक खीज-से उठे। बोले, "तो हुआ क्या? तुम लोग न जाने इतनी दया क्यों दिखाने लगती हो! इन लोगों की जात तो कुत्तों के सदृश होती है। जहां टुकड़ा मिला वहीं के हो गए। जब हमें इसकी आवश्यकता ही नहीं तो क्या करें? सौ बार कहा है—सामनेवाले डाक्टर साहब के यहां चला जा; दफ्तर में काम करने को भेजा। बदतमीज़ न काम करे तो?"

मेरा हाथ पकड़े शकुन्तला एक किनारे हो गई, बोली :

"भाभी, तुम्हें पता है न? जब आया था, तन पर कपड़े न थे। बात तक करने का शऊर न था। अब मोहनी बड़ी हो चली है। मेरे पास दूसरा नौकर है। लेकिन यह फिर भी दस दिन से लगातार पीछे-पीछे चक्कर काट रहा है। घर में बिना कहे काम करने चला आता है। कल तो इन्होंने कह भी दिया था—फिर यदि सीढ़ियों पर कदम रखा, तो तुम्हारी खैर नहीं। पर ऐसा ढीठ है!"

वास्तव में उस बारह वर्ष के पहाड़ी छोकड़े की एकटक आंखों में ऐसी ढिठाई-सी फूटी पड़ती थी, मानो वे मूक ही कह रही हों—नहीं जाता, मैं नहीं जाता।

कई बार सुनकर ऐसा लगता है जैसे ठीक ऐसी ही घटना आगे हो चुकी है और वास्तव में घर लौटने तक, लगभग चार वर्ष पूर्व की एक ऐसी ही

स्मृति मुझे हो आई।

चीथड़ों की गठरी बगल में लिए जिस दिन सवेरे-सवेरे उस नेपाली ने प्रवेश किया था—

कहां के हो ? क्या वेतन लोगे ? कहां नौकरी की है ? इत्यादि कुछ भी प्रश्न करने की गुंजाइश मुझे प्रतीत न हुई। जाने क्यों, कोई-कोई आकृति एक ही दृष्टि में स्वत: स्थान बना लेती है।

"भाभी, उसकी गठरी में तेल है।' 'साबुन की टिकया और एक टूटा ंघा भी।'—कमल जो उन दिनों वहीं मेरे पास था, बार-बार खबरें लाता।

और जिस समय कमल ने आश्चर्यचकित-सा हो आकर कहा, 'भाभी, वह तो पढ़ना भी जानता है', तो अकस्मात् मेरे मन में एक निराधार सुखद कल्पना घिर आई, यदि यही मलिन वेशधारी, ग्रीवा झुकाकर चलनेवाला निम्न श्रेणी का जीव पढ़-लिख, कोट-पैंट धारण कर किसी न्यायाधीश की कुर्सी पर जा बैठे तो !

इसी कारण रसोईघर के कार्य के अतिरिक्त बालरामायण, सप्तसरोज, प्रेमद्वादशी आदि कई छोटी-मोटी पुस्तकें उसे सौंपी गईं।

बिजली कैसे बनती है, हवाई जहाज़ का आविष्कार किसने किया, रेडियो क्या है—नूतन जगत् के ऐसे-ऐसे कई करिश्मे गोपाल को कुछ नहीं मालूम। इससे दिन-रात जासूसी एवं आविष्कार की कहानियां लिए कमल उसके उर्वर मस्तिष्क में ठोक-पीटकर बिठाने का प्रयत्न करता।

तुम्हारे घर है ? उसमें जंगला है ? अच्छा, उसमें शीशे हैं ? फर्श है ? —रसोईघर की चौखट पर बैठी बालिका वीणा उससे कई प्रश्न करती, और गोपाल सब प्रश्नों के उत्तर में केवल सिर हिला-हिलाकर 'हां-हां' कर देता।

कभी-कभी दोपहरी की निस्तब्धता को और भी करुण स्वर में प्रकट करता हुआ जब वह सीढ़ियों पर बैठा बंसी बजाने लगता, तो मुझे स्वयं ऐसा जान पड़ता मानो उसकी आंखों के आगे हरे-पीले धान और बीच-बीच में मोती-से जड़े पोस्त के लहलहाते खेत, भेड़-बकरियों के झुण्ड, ऊंचे-नीचे पहाड़ी

गांव एवं सगे-सम्बन्धी चित्रित हो उठे हैं। अल्प समय में ही गोपा । भी उसी उत्सुकता, वैसी ही प्रतीक्षा एवं उल्लास से कमल के साथ संध्या स य, उसके भैया के घर लौटने पर नीचे दौड़ा जाता, गाड़ी में से वस्तुएं, कागज़-पत्र आदि उठा लाता।

मेज़, पलंग आदि घर की प्रत्येक वस्तु को यथाविधि रखने के अतिरिक्त नाना भांति की तस्वीरों और कैलेण्डरों से गोपाल ने अपने रसोईघर को भी सुसज्जित कर लिया और दीवाली के दिन तो उसने स्वयं अपने जमा पैसों में से कागज़ की बेलें, पत्र, फानूस लाकर खूब सजाया।

यही नहीं डाकवाला जब चिट्ठी लाता तो वह बड़े कौतूहल से पूछता, "लाहौरवाले जीजाजी की चिट्ठी आई है। दिल्लीवाली बहिनजी आ रही हैं क्या ?" मानो हमारे सभी भाई-बान्धव उसके सगे-सम्बन्धी हों।

कमल जब सामने घर की ऊपरवाली मंज़िल में अपने साथियों को ताली पीटकर पुकारता और वीणा अपनी लम्बी चीखों से सारे घर को गुंजा देती, तब गोपाल का जी उछल पड़ता। उसकी मुख-मुद्रा से स्पष्ट दिखाई पड़ता कि वह कैसे उनके साथ नाचने और ताली पीटने की स्वाभाविक क्रिया को रोके हुए है। वह पतंग पकड़-पकड़कर कमल को ला देता और रात को पड़ोसियों के नौकरों पर रोब गांठने के लिए जब बरामदे में चारपाई पर सफेद चादर और तकिया लगा पांव फैलाकर सोता, तो कमल मुझे खींचकर ले जाता, "देखो भाभी गोपाल की शान !"

किन्तु किसी समय एक स्निग्ध दृष्टि-मात्र से ही वह अपना इतना अधिकार समझने लगेगा, इसका तो मुझे स्वप्न में भी अनुमान न था।

एक दिन बारह बजने को आए। कमल तथा उसके भाई खा-पीकर बाहर काम पर चले गए। घर का काम-धन्धा मैंने स्वयं ही किया। गोपाल औंधा-सा छत पर पड़ा रहा। सम्भवतः रात किसी कारण से उसे डांट पड़ी थी, और उन्होंने मुझसे कहा भी था, "व्यर्थ ही तुम गधे को घोड़ा बनाना चाह रही हो।"

मुझे स्वयं भी उसके रूठने की परवा नहीं थी, किन्तु जब दोपहर ढलने

को ग्राई तो मुझसे भी खाया-पिया नहीं गया। पड़ोसियों के नौकर से उसे बुलवा भेजा, "क्यों रे, किसलिए औंधा पड़ा था ? लाट साहब कहीं का ! बच्चों पर गुस्सा नहीं करते क्या ? कमल को ही कई बार तेरे सामने डांट पड़ी है। चल, खाना खा ले।"

गोपाल की लाल-लाल ग्रांखों में लाड़ले बच्चों की सी ढिठाई उभर ग्राई।

"बाबूजी मार लेते, पीट लेते, पर 'चला जा, यहां से चला जा !'—ऐसा क्यों कहा ?"

इतना कहकर वह ज़ोर से रो उठा ! 'ग्रोहो, इतना !—पुनः मुझे ग्राश्चर्यमिश्रित हंसी हो ग्राई।

एक दिन दोपहर को कमल की तालियों के मारे सारा घर गूंज उठा, "मनोहर ग्रा गया, मनोहर ग्रा गया !"

"मांजी ! ग्रम्मा की बीमारी के कारण ही जल्दी न ग्रा सका। मेरा कसूर माफ कर दो," ऐसा कहते हुए पुराने नौकर मनोहर ने गठरी में से भुने चने ग्रौर कुछ गुड़ निकाला, "ग्रम्मां ने दिए हैं।"

"मांजी, घर में गाएं ब्याई थीं, पिता का काज करना था, ग्रौर ग्राने के दिन तो मां ऐसी रोई······"

स्मरण हो ग्राया जब वह ग्रामीण भाषा में लिखी चिट्ठियां लेकर मुझसे पढ़ाने ग्राया करता था :

"तू चला ग्रा। जन्म-भर कमाने को रखा है। ग्रम्मां ग्रंधी हुई जा रही है।"

"हां, तो यह फूलदान नये ग्राए हैं ? यह बर्तन कैसे फूट गया ?" मनोहर ने ग्राते ही घर-भर की जांच-पड़ताल ग्रारम्भ कर दी।

"हमने एक बिल्ली का बच्चा पाला था। वीणा उसे कितना प्यार करती थी, वह पूंछ हिला-हिलाकर मेरे पीछे-पीछे भागता था। किन्तु जाने इस गोपाल ने उसे कहां फेंक दिया ! यह कुर्सी भी तो इसीने तोड़ी है। वह शीशे की सुन्दर सुराही भी इसके हाथों फूट गई।" गोपाल की पिछली सभी

भूलें कमलरावजी हंस-हंसकर मनोहर को सुनाने लगे। वीणा धम-धम करती बार-बार मनोहर की गोदी में उछल जाती।

केवल हतबुद्धि गोपाल नेत्रों में तीव्र व्यथा के आंसू भर मेरे पलंग के सिरहाने सिर झुकाकर आ खड़ा हुआ। उसके हाथ ज़ोर-ज़ोर से कांप उठे। उसकी कातर भावभंगी से मैंने उसका अभिप्राय कुछ-कुछ जान भी लिया। किन्तु पुराने नौकर मनोहर के आ जाने से मुझे घर क काम-काज से काफी छुटकारा मिल रहा था, इसीसे कहा, "गोपाल, वहां सामने घर में जगह खाली है। मैंने उन लोगों से कह भी दिया है।"

उसने भर्राई आवाज़ से कुछ कहने का प्रयास तो किया, किन्तु कह नहीं सका।

हमारे दिए हुए वस्त्र उतारकर उसने पुनः वही चीथड़ों की गठरी उठाई। जहां वह फूलों को पानी देता था, रसोईघर की दीवारें जिन्हें उसने चीज़ों से सजा रखा था, जिस स्थान पर बैठकर वह कमल से पाठ पढ़ा करता था, देखता हुआ धीरे-धीरे चल दिया।

कितने आए और कितने गए! ठीक है, इन लोगों की जात ही ऐसी है। किन्तु वे चोट खाई-सी छलछलाती आंखें, वे कांपते हाथ, वह निर्निमेष दृष्टि, जिससे वह चले जाने के बाद दूसरे दिन भी सामने फुटपाथ पर मेरी ओर लगातार देखता रहा था, शकुन्तला के नौकर की बात सुनकर आज अनायास ही हृदय में रह-रहकर उभड़ रही है।

वंशी और चिट्ठी

अखिल विश्व के हृदय को मानो विदीर्ण करता हुआ, वंशी का आकुल स्वर, जाने कहां से फूट पड़ता है। तब मेरे सारे काम-काज, कलम-दवात, बातचीत, विचार-चिन्तन—सभी एकसाथ थम जाते हैं।

नीरव उदास दोपहरी के समय या रात्रि के दूसरे प्रहर में, प्रायः पिछवाड़े होटल के रसोईघर के आंगन से, कभी सामने बाग के झुरमुट में से छिपे-छिपे, वह विकल स्वर दूर-दूर तक फैलता चला जाता है।

पहाड़ों में, निर्जन वन-प्रांतर में, ऐसे व्यथित सुर प्रायः सुने जाते हैं जा मानो उनके एकाकीपन को चीर, इधर-उधर टकराकर, उपत्यकाओं में गूंज उठते हैं।

उस अदृश्य विकल सुर के स्रोत को बहुत चेष्टा करने पर भी देख नहीं सकी।

"किसीकी चिट्ठी खोलकर पढ़ना पाप है।" पर नया डाकिया जो भी हिंदी के पते की चिट्ठी हो, भूल से यहीं उलट जाता है। 'पता' भी तो पहाड़ी पगडंडी की भांति ऊंचा-नीचा ऐसा है, तभी तो शायद समतल-निवासी डाकिया नहीं बूझ सका। वह यह भी तो नहीं जानता कि ऐसे हस्ताक्षरों से कौतूहल कितना बढ़ जाता है।

टूटे-फूटे अक्षरों में इधर-उधर की कई बातों के बाद लिखा है, "तुम्हारी घरवाली काम नहीं करती; कहती है, मेरा घरवाला आएगा तो करूंगी।"

कुछ बातें आगे की भी जोड़-जाड़कर पढ़ी जा सकती हैं—पर बस !

चिट्ठी मैंने वहीं रख दी है—आंखों के आगे दूर दिगंचल में फैले ऊंचे-नीचे छलछल, हरे-भरे, पीले धान के खेतों की निराई-कटाई में श्रम से क्लांत थकित युवती साकार घूम रही है। सांझ हो आती है, रात बीत जाती है, दिन निकल आता है, पर जिसके नेत्र नहीं थकते, पलकें नहीं झुकतीं, वास्तव में ही किसी काम में उसका जी नहीं लगता।

चिट्ठी पर इधर का ही पूरा पता न हो सो नहीं, प्रेषक का नाम, धाम, गांव, पता भी नहीं कि लौटा ही सकूं।

किन्तु वंशी का इस चिट्ठी से क्या सम्बन्ध है? मेरे मन ने यह कैसी विचित्र कड़ी जोड़ ली है?

हां! फटे चिथड़ों में, इधर-उधर बेबसी से घूमती हुई, उद्भ्रांत सूरतों को देखती हूं, तब उन पहाड़ी गानों की स्मृति रह-रहकर हो आती है, जो प्राय: अनायास ही घाटियों में गूंज उठते हैं।

जितनी बेकली वंशी के स्वर में है उससे कही अधिक इन पंक्तियों में है:

"वह काम नहीं करती! किसी काम में उसका जी नहीं लगता—घरवाला आएगा तो करेगी।"

जान पड़ता है, लिखनेवाला किसीका बड़ा भाई है, आगे लिखता है, "इसमें तुम्हारा ही दोष है! न आए, न चिट्ठी ही भेजी,...संभालो!"

पर कोई नहीं जानता, चिट्ठी उसे नहीं मिली, वह उन्मुक्त, लोकलाज-हीन संदेश, निर्दिष्ट पात्र के हृदय तक न पहुंच, किसी पढ़े-लिखे उद्धत के साहित्य-भंडार में ही आकर बंद पड़ा है।

वंशी बजाते-बजाते, उसे घर जाने का मानो मोह नहीं रहा, सोचता होगा, 'दो पंक्तियां ही लिखवाकर डाल देती'—इतना भी न कर सकी! तो वह क्यों जाए? कौन-सा उसके बस में है, पराधीन है, हाथ-पैर बंधे हैं!

वह राह-राह घूमेगा, झुरमुटों में छिप-छिपकर ही हृदय के उन्माद को

वंशी द्वारा व्यक्त करेगा।

पर हाय रे ! कौन जाकर उसे कहे—चिट्ठी आई है, आई है ! सत्य ही आई है, और वास्तव में लिखा है, "वह काम नहीं करेगी—जब तक वह नहीं आएगा नहीं करेगी !"

इन वंशी बजानेवालों में कौन भाग्यशाली है जिसकी पर्वतवासिनि अधीर नेत्रों से उसकी प्रतीक्षा कर रही है ? कौन वह बंदी विरही यक्ष है ? अटपटी अलकें, क्लांत-भ्रांत मुद्रा, धान के खेतों में ठिठककर एकटक ताकते हुए प्राण जिसके लिए विकल हैं—समझ में नहीं आता, किन कंपित हाथों में चिट्ठी सौंपी जाए और कहां संदेश या उत्तर दिया जाए !

नारी हृदय की साध

वेद में यम और यमी नाम के दो भाई-बहिनों की बात पढ़कर सहसा मुझे प्रकृतिमाता की एक युगल सन्तान की याद हो आई है। मेरी मानसिक दृष्टि अचानक जा पहुंची है हिमाच्छादित, शुभ्र शिखरों की शीतल छत्रछाया में, फेनराशि फेंकती हुई दूध की नदी-सी लम्बोदरा की जलधारा की ओर और लम्बोदरा के उस पार, चीड़, देवदारु, भोजपत्र के हरे-भरे सघन तरुओं के बीच। स्वर्ग की वह भू-पतिता घाटी-सी जिसे कश्मीरी लोग 'पहलगाम' कहते हैं।

आगे-पीछे, दायें-बायें, हाथ में हाथ डाले और कन्धे से कन्धा भिड़ाए हिमालय की श्रेणियां ऐसी खड़ी हैं, मानो सृष्टि-नाटक के अभिनय का सूत्रपात करते हुए विधाता ने सुरबालाओं को हरित, श्वेत और पीत परिधानों से सुसज्जित नृत्य कराने की इच्छा से वहां ला खड़ा किया हो। परन्तु अभागिनी लम्बोदरा किसी नासमझ नवयुवती के समान अपने हृदय के उतावलेपन पर विजय नहीं पा सकी। इस सुन्दर स्थान पर पहुंचने से पूर्व ही पर्वत की भीमकाय शिलाओं का मुकाबला करके उसने अपना हृदय चीर डाला। इस स्वर्ग सदृश घाटी में पहुंचकर भी उसकी अगणित अश्रु-धाराएं असीम विरह-व्यथा के भारी भार को लेकर समाप्त नहीं हुईं। वह अब भी पुकार-पुकारकर हाहाकार कर उठती है।

और लम्बोदरा का भाई शेषनाग! वह तो नदी होकर भी पुरुष है! उसके दिल में वह उतावलापन, भावों का वह उफान कहां! किसीसे मिलने की चाह उसके जी में भी है; मगर वह पुरुष जो है। पुरुष होने के कारण

ही वह राह-भर के झरनों पर अपना रोब गांठता आया है—कहीं उछलकर, कहीं शोर मचाकर और कहीं तेज़ी से दौड़कर। मार्ग-भर में वह अपनी अज्ञात प्रियतमा के लिए अभी से उपहार भी बटोरता आया है, और इस हरी-भरी तथा शान्त घाटी में पहुंचकर जैसे वह बड़ा गम्भीर और विचार-वान बन गया है।

बहिन मानो वेदना, पीड़ा और दर्द से सिसक रही है। लम्बोदरा का नारी-हृदय प्रेम की जिस चरम सीमा तक—जिस गहराई तक—पहुंच पाया है, वहां तक शेषनाग शायद लाखों जन्म बाद भी न पहुंच सकेगा। गम्भीर तरुण विरहिणी—जिसको अपने भविष्य का कुछ भी ज्ञान नहीं; जिसे यह भी ज्ञात नहीं कि उसका विरह किस व्यक्ति या किस पदार्थ के लिए है—नहीं जानती कि सर्वस्व समर्पण कर देने की उसकी इच्छा का अन्त कहां है। उसे नहीं मालूम कि उसका प्रबल प्रवेग कहां जाकर शांत होगा। एक ही धुन में, अपनी रहस्यमयी साध को पूरा करने की आशा में, उसने न जाने कितने दिन, कितने महीने और कितने वर्ष बिता दिए हैं! न जाने कितनी अंधेरी और कितनी चांदनी रातें उसने सिसक-सिसककर काटी हैं!

भाई ने अपनी बहिन को देखा। लम्बोदरा के अथाह हृदय का सभी कुछ तो नहीं जान पाया, फिर भी बहिन के जी की कसक उससे छिपी न रही। शेषनाग कुछ ही पत्थरों का अन्तर छोड़कर लम्बोदरा के समानान्तर बहने लगा और पुरुषोचित साहस के साथ उसने पूछा, "बहिन, इतना भी क्या? ऐसा उन्माद भी किस काम का? जिसके विरह में रात-दिन एक करके तुम शीघ्रता से भागी जा रही हो, उसे तुम नहीं जानतीं, मगर मैं उसे जानता हूं। वह महास्वार्थी है, और एकदम हृदयहीन है। तुम उससे जाकर मिलोगी, तो वह तुम्हारा अस्तित्व भी मिटा देगा। तुम्हारे इस मिलन के दो मील नीचे ही तुम्हारा नाम भी कोई न जानेगा।"

नवयुवती लम्बोदरा तपस्विनी की भांति धीरे से कह उठी, "भाई, इस

तरह चुपचाप अपना अस्तित्व मिटा देने की चाह ही तो नारी-हृदय की सबसे बड़ी साध है !"

शेषनाग ने यह सुना और उसे निश्चय हो गया कि उसकी बहिन पगली हो गई है। एक समझदार युवक के समान वह धीरे से और चुपके से पृथक् हो गया।

सिद्धवां

एक था सिद्धवां। वह दिन में तो तप करता था, शाम को रोज़ जाता था, महाराज, एकदम शंकराचार्यजी की पहाड़ी पर। उधर रोज़ के वक्त बच्चे खेलने को आते थे, बहुत खुश होते थे, नाचते थे, गाते थे। सिद्धवां ने बच्चों से पूछा, "बालको ! तुमको क्या आनन्द आता है ? किसके साथ खेलते हो ?" तो महाराज ! बच्चे बोलने लगे, "हम नहीं जानते कौन है, लेकिन एक साधु है और बैल पर चढ़कर आता है।" बच्चे फिर प्रसन्न होकर नाचने लगे। अब सिद्धवां मन में सोचने लगा, महाराज, कि मैं दिन-भर तप करता हूं, मुझे किसीके भी दर्शन नहीं होते। उसने फिर बच्चों से कहा, "बालको, मुझे भी साधु को दिखलाओगे ?"

"अच्छा, कल फिर इधर आना।"

अब महाराज ! सिद्धवां को चैन न था। वह रात-भर सोचता रहा, सारी उमर जिसके लिए आराधना और तपस्या की, वह मुझको नज़र नहीं आया। इन छोटे बच्चों के साथ कौन खेलता है ? भगवान शंकर की क्या माया है ?

बस महाराज ! अगले दिन वह फिर शंकराचार्यजी की पहाड़ी पर गया। लड़के फिर उसी तरह खेल में लगे थे, उन्होंने सिद्धवां को झट से कहा, "देखो, देखो, तुम्हें साधु महाराज नजर आते हैं कि नहीं ?" उसने बहुत इधर-उधर देखा, लेकिन कुछ नज़र नहीं आया।

बालकों ने कहा, "अच्छा तो यह लो, बैल की पूंछ पकड़ो। इसको ज़ोर से पकड़ना तो खुद ही नज़र आएंगे।"

बस महाराज ! सिद्धवां को और क्या था, उसने बैल की पूंछ ऐसी ज़ोर से पकड़ ली कि छोड़ी ही नहीं। नज़र तो उसको अब भी कुछ नहीं आया, पर फिर भी वह चलता ही गया, चलता ही गया। चलते-चलते जंगल आ गया, रात हो गई, तब आवाज़ आई, "भाई तू कौन है ? कहां तक साथ चलेगा ?"

"मैं सिद्धवां हूं महाराज ! मैं वर्षों से तप कर रहा हूं, पर सिद्धि प्राप्त नहीं हुई ; बच्चों को आप दर्शन देते हैं, लेकिन मुझे क्यों नहीं दिखाई देते, प्रभो ! मैं जान गया हूं, आप ही भगवान शंकर हैं। मैं नहीं छोड़ूंगा—अब मैं कभी नहीं लौटूंगा !"

"सिद्धवां, एक काम करो। अभी तुम्हारी तपस्या पूरी नहीं हुई। देखो, महाशिवरात्रि के दिन तुम इसी तरह चलते-चलते शेषनागजी तक आना, वहीं तुमको दर्शन प्राप्त होगा।"

बस महाराज, सिद्धवां ने खुश होकर पूंछ छोड़ दी। और फिर दिन-रात घोर तप करने लगा। गर्मी गई, पतझड़ आया, शीतकाल आया और दिन-दिन, घंटे-घंटे, पल-पल गिनते-गिनते महाशिवरात्रि को कुछ दिन ही बाकी रहे तो उसने छोटा-सा बिस्तर तैयार किया। लेकिन शेषनाग तक रास्ता महाराज ! कैसा खौफनाक है ; जंगल है, चढ़ाई है, मील-मील तक सब जगह बरफ ही बरफ है ! उफ, कैसी ठंडी-तेज़ हवा चली है उन दिनों ! उसने क्या काम किया महाराज ! एक कुली को ठीक किया साथ के वास्ते। कुली का नाम था सुभाना। कहा, "चल दोस्त ! तू एक बोरी में कोयला भर ले और महाराज एक कांगड़ी ले, एक अंगीठी, भात और चाय पकाने के वास्ते।" अब जी दोनों खूब चादर, लोई-वोई लपेटकर चलते हैं और जाते-जाते कोई एक महीना लग जाता है, बड़े-बड़े ऊंचे पहाड़ हैं, रास्ता कहीं भी नज़र नहीं आता—कभी काले-काले बादल आते हैं तो कभी बरफ पड़ने लगती है। पैरों में कड़कशु (सुन्न हो जाना) लगता है, और कभी बिलकुल अंधेरा और डम-डम डमरू बजने लगता है। तो भी वे हारते नहीं, ऊपर ही ऊपर चलते जाते हैं।

आखिर, एक दिन बहुत चढ़ाई पार करके सामने कुछ नीला-नीला पानी दिखाई देता है—सिद्धवां तो महाराज ! खुशी से एकदम नाच उठता है। और पागल के माफिक दौड़ता है। सुभाना को तो कुछ नज़र में नहीं आता; वह पूछता है, "तुमको क्या नज़र पड़ता है ? क्या है ?"

"देखो, देखो भाई ! मेरा तो जन्म सफल हो गया। वह देखो, शंकर-पार्वती शेषनाग सरोवर में किश्ती के अन्दर बैठकर सैर करते हैं।...अब तो साक्षात् दर्शन हो गया भगवान। आप ही तो वह संन्यासी थे। शंकर ! मैं तब से आपके पीछे-पीछे आता हूं।"

भगवान शंकर ने सिद्धवां को दूर से ही देख लिया। उन्होंने कहा, "तेरी साधना सफल हो गई। अब कुछ परवाह मत कर।" उन्होंने किश्ती किनारे पर लगाई, और सिद्धवां को अपने साथ बिठाकर ले गए।

अब रहा महाराज ! यह बेचारा सुभाना। शंकर भगवान ने उसे आवाज़ देकर कहा, "जा भाई, तू यह बोरी लेकर घर जा, बहुत काम आएगी।"

पर महाराज ! सुभाना ने कुछ भी न पाया—और सिद्धवां के एकदम गायब हो जाने से वह तो बिलकुल हैरान था। अब खाली कोयले की बोरी घर को ले जाने की बात सुनकर रोने जैसा हो गया। वह पहले ही थका भी तो बहुत था—और अब उसको तो उतना ही वापसी में और चलना था, खफा होकर उसने सारी बोरी का कोयला तो उधर रास्ते में ही गिरा दिया और दौड़ता-दौड़ता किसी तरह घर तक पहुंचा।

अब जो घर पहुंचकर उसको बीवी ने रोता देखा तो पूछा, "क्यों जी, क्या हुआ ? सिद्धवां के साथ यात्रा में क्या इनाम मिला ?"

सुभाना को तो और भी गुस्सा आया, उसने कोयले की बोरी को ज़ोर से पटककर कहा, "कुछ भी नहीं ! न कुछ देखा, न पाया; सिर्फ दर-बदर चलना ही चलना, और क्या !"

लेकिन महाराज ! बोरी पटकी कि उसमें से फौरन दो-तीन हीरे, जवाहरात नीचे गिर पड़े।

बीवी ने कहा, "बेवकूफ, सारी बोरी तू कहां फेंक आया ? शंकर भगवान

ने तेरे कोयले को असल में जवाहरात ही बना दिया था। जा फिर दौड़कर, बोरी भरकर ले आ, जिधर गिराया था।"

बस जी ! वह सुभाना दुबारा जाता है; फिर वही खौफनाक जंगल है, बर्फ ही बर्फ है, नदियां हैं···उसने सब वन और पर्वत, चोटियां तक छान डालीं, लेकिन अब तो उधर क्या, कुछ भी नहीं महाराज !···नमस्कार। भगवान शंकर आपका कल्याण करें।

सगाई के दिन

विद्याधर के हज़ार मना करने पर भी उसकी बहिन भगवती ने अपने अनेक मित्र-बान्धवों और परिचितों को निमंत्रणपत्र भेज दिए। सगाई का मुहूर्त नौ बजे सवेरे दिया गया था, किन्तु लगभग आठ बजे से ही पास-पड़ोस के लोगों का आना शुरू हो गया।

बरामदे तथा भीतर की बैठक में महिलाओं एवं बच्चों के बैठने का और बाहर कोठी के अहाते में शामियाना लगाकर पुरुषों के स्वागत का प्रबन्ध किया गया था।

कोठी के आसपास लगे हुए केले के झाड़ों और अमलतास के पीले पुष्प-गुच्छों ने सभा-मण्डप की शोभा और भी बढ़ा दी थी।

शामियाने के नीचे एक ओर रंग-बिरंगे द्रव्यों से चित्रित वेदी में हवन-कुण्ड रखा गया था। धूप, चन्दन, अगरु आदि सामग्री के अतिरिक्त वहीं क्यारियों में खिली बेला-चमेली की ताज़ी गंध भी बार-बार उड़ती पवन के साथ मानो आगन्तुकों का स्वागत कर उठती थी।

सफेद ड्रेस में अनाथालय का बैंड किंचित् अवकाश ले-लेकर एक नूतन राग बजा देता था।

विद्याधर के बहनोई लाला ज्ञानीराम तथा उसके भानजे श्री प्रकाशचन्द्र आने-जानेवालों को आदरसहित बिठलाते जाते थे। सोडा-लेमोनेड, पान-सुपारी के अतिरिक्त एक-एक बेले का गजरा भी आगन्तुक महोदयों के गले में डाला गया।

शहर-भर में लाला ज्ञानीराम से भी अधिक मेल-मिलाप और जान-

पहचान उनकी स्त्री की है। इसी कारण झिलमिलाते वस्त्र-आभूषणों से सुसज्जित युवतियां, कन्याएं एवं बड़ी स्त्रियां बादाम, नारियल आदि से भरपूर तौलियों से ढके थाल बैठक में एक ओर एक बड़ी मेज़ पर सजा रही हैं।

बैठक में कुछ देश-नेताओं की और सिनेमा-एक्ट्रेसों की तसवीरें टंगी हैं।

ज़री अथवा सलमे से जड़ित पोशाक पहननेवाली टोली एक ओर बैठी हुई अपनी-अपनी शादी-सगाई की बातें सुना रही है। दूसरी ओर जम्पर-साड़ियों पर काढ़े गए बेल-बूटों की चर्चा करती हुई कुछ युवती कन्याएं बैठी हैं। कमरे के बीचो-बीच लाल दुपट्टा ओढ़े श्रीमती भगवती देवी बहुत-सी वृद्ध एवं प्रौढ़ स्त्रियों से घिरी शगुन लेने न लेने का कार्य कर रही थीं। बरामदे में एक ओर अल्पवयस्क बालकों ने ग्रामोफोन लगा रखा था। सफेद वस्त्र पहने नौकर ट्रेपर शीशे के गिलासों में लैमोनेड, सोडा एवं कुछ मिष्टान्न लिए कमरों में घूम रहे थे।

मंत्रोच्चारण, शान्तिपाठ के साथ नौ बजे हवन समाप्त हुआ। विद्याधर के हाथ में कंगन बांधा गया। कन्या-पक्ष की ओर से उसके चाचा एवं भाई एक सौ रुपया तथा पचीस थाल फल, मिठाई आदि से सजाकर लाए थे जिन्हें बड़े उत्साह से सजाकर उठा-उठाकर सुरेन्द्र, महेन्द्र, पद्मा—विद्याधर के छोटे भानजी-भानजे अन्दर कमरे में ला रहे थे।

विद्याधर की आंखें हवन के धुएं से कुछ-कुछ लाल हो रही थीं। किन्तु एक अलौकिक प्रसन्नता उसके चेहरे पर खेल रही थी। हृदय में एक मृदु उल्लास था। गले में बड़ा-सा जूही का गजरा और माथे पर केसर का टीका था।

लज्जान्वित हो वेदी से उठकर प्रथम उसने बहनोई के चरणों में प्रणाम किया, इसके उपरान्त एक-दो मित्रों एवं बच्चों से घिरा हुआ भीतर जीजा का आशीर्वाद लेने चला। बहिन ने भाई के सिर से छुआकर रुपये-पैसे बांटे।

कुछ वृद्धा स्त्रियां एकसाथ मीठे स्वर में घोड़ी गाने लगीं :

"निकी निकी बूंदी निकया मींह वे बरे।
मां ऐ सुहागन—तेरे शगन करे !"

(नन्ही-नन्ही बूंदें पड़ रही हैं ! बच्चे, मां, सौभाग्यवती तेरे शगुन मना रही हैं।)

एक दुपट्टे की कोर से आंखें मलती हुई एक स्त्री बोल उठी, "हां, आज बेचारे की मां होती, बाप होता…"

दूसरी—हाय ! वह तो तरसती थी इस घड़ी को। आज विद्याधर की नौकरी भी लग गई है, शादी होनेवाली है।

तीसरी महिला धोती पर दो लेसदार दुपट्टों की जोड़ी को संभालती हुई कह उठी, "बेचारी के भाग्य में यह दिन देखना नहीं लिखा था।"

युवक विद्याधर यह सब क्या सुन रहा है !

एक ही वर्ष की बात है। ओह ! मां की निर्जीव देह इसी स्थान पर, इसी कमरे में पड़ी थी—सब अपमानों, सब कष्टों से विमुक्त।

पिता को उसने जन्म से नहीं देखा, सुन रखा है—उसके पिता एक सरकारी पद पर नियुक्त होकर बरमा गए थे। वहीं उन्होंने एक बरमी स्त्री से शादी कर ली और बस गए।

विद्याधर के मस्तिष्क में यह विचार क्षण-भर के लिए घूम गया। जब से उसने होश संभाला है, अपने को बड़ी बहिन के घर में पलते देखा है। सगी बेटी के घर में रहते-रहते मां जिस लज्जा को पीकर रह जाती थी, साथ ही साथ वह उसका अनुभव करता आया है।

उसकी आंखों में बचपन की एक घटना बेतरह बौखला उठी। वह ज़िद कर रहा है। मैं भी वैसे ही नये सफेद बिस्तरे पर सोऊंगा, जैसा प्रकाश (भगवती के बड़े लड़के) ने लिया है। मैं भी वैसा ही कोट सिलवाऊंगा—हरा ब्लैज़र। बहनोई एक डंडा लेकर उसकी पीठ तोड़ने पर तुले हुए हैं !

"इतना साहस तेरा ! कमीने !"

और जिस दिन शायद घर में एक अवसर पर निमंत्रण दिया गया था,

बाहर बैठक में बड़ी दावत हो रही थी ! गाना-बजाना होता रहा बहुत देर तक। और मां वहीं रसोईघर में बैठी बर्तन मल रही थी। वह बार-बार मां को खींचकर बाहर ले जाने का प्रयत्न करता। किन्तु और किसी-ने भी बाहर से आए हुए लोगों से मां का परिचय कराने की आवश्यकता नहीं समझी। कहने को बड़ी छोटी-सी बात है। किन्तु एक अबोध हृदय पर ऐसी ही छोटी बातें सदा के लिए आघात छोड़ जाती हैं।

और जब एक दिन कालेज जाते समय मां से रुपये मांगे तो इसी बहिन ने किस बुरी तरह मां को डांटा था, 'बच्चों को बहुत बिगाड़ा न कर, कौन बैठा है तेरा यहां कमानेवाला ?'

सचमुच मां यदि आज होती ! अपने पिता का स्नेह कहीं उसे प्राप्त होता ! विद्याधर छोटे नन्हे बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो उठा।

उसके हृदय में न केवल स्वर्गीया मां की स्मृति ही, अपितु बचपन के अविधेय पराश्रित जीवन—उस स्वाभाविक वात्सल्यपूर्ण पिपासा की जागृति एकसाथ हो उठी।

ओह ! आज वह एक अच्छे कारोबार में लग गया है, अच्छी आमदनी है। किस उत्साह के साथ आज यही सम्बन्धी समारोह मना रहे है !

"बस कर बेटा !"

विद्याधर के सिर को छाती से लगाकर एक स्त्री ने कहा, जो शायद उसकी रिश्ते में चाची लगती थी, "अब यही तेरे मां-बाप हैं। अपने मां-बाप ठंडी छाया होते हैं।"

आंचल के कोर से क्रमशः उसने अपने तथा विद्याधर के बहते हुए आंसुओं को पोंछा।

एक-दूसरी के कान में बातें करती हुई अन्य दो-तीन स्त्रियां कहने लगीं, "भगवती का स्वभाव तेज़ था। डरती थी वह लड़की से।"

"भई, मरी हुई तो ज़रा नहीं लगती थी।"

"ऐसी लगती थी जैसे सो रही हो।"

क्षण-भर में कमरे का सारा वातावरण एकदम निस्तब्ध हो उठा। ऐसा

सन्नाटा छा गया मानो विद्याधर की मां की मृत देह यहीं बीच में फर्श पर पड़ी हो।

इसी समय बाहर से दो सुन्दर बालिकाओं को साथ लेकर भगवती ने प्रवेश करते हुए कहा, "विद्याधर, तुम्हारी छोटी सालियां तुम्हें देखने आई हैं।"

◇ ◇ ◇